# एक शब्द उठाता हूँ

अनन्त मिश्र

अनन्त मिश्र का कविता-संग्रह बहुत विलम्ब से पाठकों के पास पहुँच रहा है। इसका मुख्य कारण यही है कि वे छपास रोग और इतिहास-प्रवेश की लालसा से मुक्त एक शुद्ध कवि हैं जो कविता लिख कर ही मुक्त तो हो जाते हैं और तृप्त। उनकी कविता से कोई कौन सा हित-साधन कर लेगा या उन्हें कवियों के किस खाने में डाल देगा, इसकी चिन्ता उन्हें नहीं। समुद्र मन्थन के इस भयानक देव-दानव संघर्ष में वे जिन्दगी की लय के साथ हैं। थके हारे बूढ़े काका के लिए एक चारपाई की तरह, बछड़े के लिए गाय के कच्चे दूध की तरह। जो जीवन-धारा में बहना चाहते हैं उनके लिए अनन्त मिश्र के पास हमेशा हैं कविताएँ। कविताएँ जिनमें सायास बुनावट नहीं, चालाकियाँ नहीं, छद्म नहीं। जो सहज संवेदना और कवि की उपस्थिति से भरी पूरी है। कवि जो पक्षियों को छंद की तरह तृप्त भाव से देख सकता है और जेब में मूँगफली भरे, चिड़ियों से बातें करते भीड़ में गुजर सकता है। अनन्तरूपात्मक जगत के साथ कवि का सहज लगाव उसे मानव के साथ मानवेतर प्राणियों तक ले जाता है—नाग-नागिन, पात-पुरइन, बाघ-बाघिन, कुत्ते, गदहे, अमरूद के तोते और गिलहरियों तक। सायकिल और बेंच जैसे प्राणहीन पदार्थों की भी चिन्ता है कवि को। उसे विश्वास है कि यह दुनिया रहेगी इसलिए वह आदमी को बार-बार उसके बीज होने की याद दिलाना चाहता है। अपने समय की चालू, दो दुना चार वाली कविताओं से अलग मस्ती में, पस्ती में, राग और विराग में लिखी गई अनन्त मिश्र की ये विरल कविताएँ कविता को किसी परिभाषा में बाँधने के जड़ प्रयास का प्रतिकार करती हैं।

—विश्वनाथप्रसाद तिवारी

एक सौ अस्सी रुपये

# एक शब्द उठाता हूँ

अनन्त मिश्र

विश्वविद्यालय प्रकाशन, वाराणसी

EK SHABDA UTHATA HOON

*by*

Dr. Anant Mishra

ISBN : 81-7124-274-X

प्रथम संस्करण : 2001 ई०

*प्रकाशक*

**विश्वविद्यालय प्रकाशन**

चौक, वाराणसी-221 001

फोन व फैक्स : (0542) 353082, 353741

E-mail : vvp@vsnl.com ● E-mail : vvp@ndb.vsnl.net.in

*मुद्रक*

वाराणसी एलेक्ट्रॉनिक कलर प्रिण्टर्स प्रा० लि०

चौक, वाराणसी-221 001

स्मृति शेष

माता-पिता
के
श्री चरणों में

—अनन्त मिश्र

# अपनी ओर से

बचपन में कब कविता लिखने की लत लगी, याद नहीं। अपने घर के सामने कुएँ की जगत पर बैठकर सूरदास के किसी पद के सहारे एक पद मैंने पहली बार लिखा था। कुछ विरक्ति जैसी अनुभूतियाँ थीं, पिता को दिखाया, वे व्याकरण के पण्डित थे, उन्होंने झिड़क दिया। वे मुझे बौरहवा कहते थे, उनकी दृष्टि में यह एक नये किस्म की बौराही थी। बात आई, गई, खत्म हो गयी। पर लिखने और फेंक देने की आदत नहीं गई। यहाँ-वहाँ जहाँ कहीं एकान्त मिलता, कागज कोई दिख जाय, रेल का टिकट ही सही, कुछ न कुछ काव्यनुमा लिख कर फेंक देने की आदत ने मुझे कवि बना दिया। आज यहाँ से लेकर मेरे गाँव के घर में मेरी लिखी कविताओं के कागजों का जंगल है, जिसमें से बहुत कुछ तो मेरे परिजनों ने फेंक दिया और इस प्रकार कूड़ा इकट्ठा होने से बचा लिया पर जब रोज कारखाना चालू है तो कहाँ तक फेकेंगे। बड़ा होने पर कुछ कविताएँ छपीं। यहाँ-वहाँ। उनमें से सबका पता तो नहीं है पर मेरे मित्रों और प्रियजनों के कारण जो छपी कविताएँ इस समय उपलब्ध हैं, उनका यह संग्रह और मेरा इस प्रकार प्रथम काव्य संग्रह आप के हाथों में है। आप पढ़लें और यदि आप को कुछ लाभदायक बातें इसमें मिल जायँ तो मेरा अहोभाग्य।

यह संग्रह प्रिय प्रेमव्रत तिवारी और मेरे दोनों पुत्रों अनुपम मिश्र और अप्रमेय मिश्र की प्रेरणाओं का परिणाम है। उनके प्रति आशीर्वचन।

**अनन्त मिश्र**

संवत् २०५७
वसंत पंचमी
नलिनी निवास, दाउदपुर
गोरखपुर- २७३ ००१
दूरभाष- ३४०४१९

# विषय-सूची


| क्रम | पृष्ठ |
|---|---|
| अपराजेय अच्युत | १ |
| अकाल मृत्यु की परिकल्पना में | ३ |
| याचक | ५ |
| खेती बारी | ६ |
| अर्थ-व्यवस्था | ७ |
| नींद मुझे नहीं आती | ८ |
| साइकिल | ९ |
| ऑटोग्राफ | ११ |
| बच्चा | १२ |
| बूढ़ा | १३ |
| गिरफ्तारी देने वाला शिक्षक | १४ |
| कच्चे हैं दुःख | १५ |
| प्रक्रिया से गुजरते हुए | १७ |
| शाम को | १८ |
| क्षमा-याचना | १९ |
| पतझर करेगा पश्चात्ताप | २० |
| झुकी हुई औरत | २१ |
| सुबह होती है | २२ |
| इस साल औरतें | २३ |
| चिड़ियाँ और मैं | २५ |
| छः सेठानियाँ | २६ |
| बुद्धिजीवी | २८ |
| प्रेम के मामले में | २९ |
| मेरे लिए | ३० |
| चौरतफा सुबह | ३१ |
| मकान | ३२ |
| तिनका | ३४ |
| घाटी | ३५ |
| काली रात में अकेलापन | ३६ |
| रचने दो अँधेरा | ३७ |
| कृपया धीरे चलिए | ३८ |
| वरेण्य प्यार | ४० |
| याद | ४१ |
| जरूर | ४२ |
| हम पेड़ों के बीच | ४३ |
| एक दिन | ४४ |
| प्रत्यावर्तन की प्रार्थना में | ४६ |
| नए वर्ष के आगमन पर | ५० |
| वसंत : कुछ छवियाँ—एक, दो, तीन | ५२ |
| प्रश्न है वसंत से | ५५ |
| सौदागर वसंत | ५७ |
| गुंडे | ५८ |
| स्त्री | ५९ |
| धूप में बैठे हैं दो जन | ६० |
| संध्या का अपना रथ है | ६२ |
| शुक्रिया मेरे शब्दों! | ६४ |
| उदास रहने का दिन | ६५ |
| जाड़े का दिन | ६६ |
| आज वसंत पंचमी है | ६७ |
| झोला लिए आदमी | ६९ |
| समुद्र-मंथन | ७१ |
| लड़की का क्या दोष था? | ७२ |
| शहर, दिन-प्रतिदिन | ७३ |

| क्रम | पृष्ठ |
|---|---|
| मेरे शहर के लोग | ७५ |
| सन्नाटा | ७७ |
| वक्त की असलियत | ७८ |
| संक्रमण-क्रम | ७९ |
| अभी बंद है दरवाजा | ८० |
| चक्की | ८१ |
| घास | ८३ |
| हम घोड़े थे फालतू | ८४ |
| ठहरे हुए | ८५ |
| आप के लिए कविताएँ | ८६ |
| रोशनी | ८७ |
| प्रणाम | ८७ |
| अपनी मंजिल | ८८ |
| घृणा | ८८ |
| ओ मेरी प्रिया | ८९ |
| प्रेमिका ने कहा | ९१ |
| सुरती ठोंको | ९२ |
| सम्बन्ध-सूत्र | ९३ |
| निसर्ग-नियति | ९४ |
| पत्नी—एक | ९५ |
| पत्नी—दो | ९६ |
| स्मृति शेष पिता : दो कविताएँ | ९९ |
| मेरे रहते वह नहीं कटेगा | १०२ |
| वे जरूर आयेंगे | १०४ |
| इस साल | १०५ |
| जिसे हम प्यार करते हैं | १०६ |
| शब्द और अर्थ | १०७ |
| सम्प्रेषण | १०८ |
| रूप सरोवर | १०९ |
| उद्यान की बेंच | ११० |
| शहरी रिक्तता का गीत | १११ |
| यही तो होता रहा है हर बार | ११२ |
| इस बरसात में | ११३ |
| महाभारत के संजय की स्मृति में | ११४ |
| इतिहास दौरे पर है | ११५ |
| स्मृति-व्यथा | ११८ |
| वसन्त-आगमन | ११९ |
| आप कुछ नहीं कर सकते | १२० |
| शब्द और चुप का रहस्य | १२२ |
| गांधी के प्रति | १२३ |
| भयानक शब्द | १२५ |
| अरण्य रोदन | १२६ |
| कलिकथा | १२९ |
| जीवन | १३१ |
| बूढ़ी औरत | १३२ |
| बची रहेंगी कविताएँ | १३४ |

# अपराजेय अच्युत

हम तब भी सजते सँवरते हैं
जब हमारी एक आँख फूट जाती है
एक काला नफीस चश्मा पहन लेते हैं
अपनी अकड़ को ढाल की तरह सँभाले
मित्रों में कहकहे लगाते हैं।
हम तब भी शृंगार करते हैं
जब हमारी दोनों आँखें चली जाती हैं
अपने, पराये या अपना बनाये
नाती-पोते की नन्हीं उगुलयों के सहारे
लकुटिया टेकते हुए
सड़क की पटरी ठोकते हुए चले जाते हैं,
फर्क यही रहता है—तब हम अपने सजे हुये बाल
अपनी नहीं परायी आँखों से देखकर
आश्वस्त होते हैं।
बेटे के ब्याह में तब भी हम
सजते-धजते और पियरी पहनते हैं
मुरेठा बाँधते हैं
जब हमारी कमर झुक जाती है,
जिन्दगी को तिल-तिल जुटाने की लम्बी यात्रा में
गालों पर झुर्रियाँ उभर आती हैं
और हल-बैल हारी तबाही
कर्ज-वसूली की दुनिया
हमें मार-मार कर दुम्बा बना देती है
हमारा हौसला कभी पश्त नहीं होता
तब भी हमारे चेहरे पर कोई न कोई
अबीर मलता है
जब होली अपनी जवान देह
हमसे सटा देती है

और आमों के बाग में
दोपहर और धूल के बावजूद
एक भीनी गन्ध हमें सन्नाटा ओढ़ने के लिए
मजबूर कर देती है।
हम तब भी उदास नहीं होते
जब कोई अपना गैर की तरह पेश आता है
और हमारी सबसे कोमल अपेक्षाओं के फूलों पर
पाँव रखकर, चला जाता है
हम उस समय भी अपने आँसू सँभालने के लिए
मुस्कराते हैं, जोर से हँसते हैं,
जब सबसे खौफनाक तारा
दर्द के आकाश में टूटकर
बेहया आत्मा के किसी हिस्से में
विलीन हो जाता है।
सब कुछ समाप्त होने के बावजूद
एक नितान्त, सूना ही सही
जीवन बच जाता है,
हम अपने खण्डहर के मिट्टी के फर्श पर
गोबरी करते-कराते हैं
टूटी दीवालों पर सफेदी
जाले साफ करते हैं
और एक छोटे से उत्सव के लिए ही सही
एक बोरा,
अपने खाने का गेहूँ बेच देते हैं।
अपराजेय अच्युत हैं हम
निसर्ग निर्मत्सर नारायण
धरती-पुत्र, पृथ्वी परायण
हम जमा-जमा कर अंगदी पाँव रखते हैं
संघर्ष की सभाओं में
बार-बार विचलित होते हैं वीर से वीर
विविध युगों के दसशीश भैरव-भयानक-रुद्रातिरुद्र
रण-बाँकुरे रावण।

## अकाल मृत्यु की परिकल्पना में

एक दिन मर जाऊँगा मैं
औषधियाँ धरी रह जायेंगी
मेरे इर्द-गिर्द
अपनी नाकामयाबी पर रोयेंगी
और मेरे बच्चे अचानक
मालिक बन जायेंगे
मेरी छोटी-मोटी जायदाद के।
मेरी औरत पुक्का फाड़कर रोयेगी
जुट जायेंगी स्त्रियाँ
और उसे जल्दी से जल्दी
सधवा बने रहने से रोक देंगी,
जुटते चले जायेंगे
मेरे निकटवर्त्ती—
जो फुर्सत में होंगे
और देर सबेर अन्य जता जायेंगे
मेरे न होने का दु:ख।
सब कुछ शान्त हो जायेगा
मेरा
कहीं कुछ नहीं घटित होगा
जैसे हो जाता है रोज
एक सामान्य सबेरा।
कुछेक मित्र जल्दी में
कर लेंगे शोक-सभा
अखबारों में कुछ ज्यादा ही बढ़ा-चढ़ाकर
कुछ मित्र-सम्पादक
लिख देंगे कुछ टिप्पणियाँ
एकाध पंक्तियाँ करते हुए उद्धृत

मैं सोच रहा हूँ
मृत्यु से पहले मेरी मौत
कितनी बड़ी कविता बन सकती है,
पर मेरे मरने के बाद
शायद ही कोई बन सके कविता।

# याचक

वे आये हैं मेरा दु:ख
मुझसे माँग ले जायेंगे
उससे बनायेंगे
एक साइकिल
जिस पर बैठकर
वे शहर में चक्कर लगायेंगे।
वे आये हैं इस बार फिर
जैसे पहले आते थे
वे आये हैं
मुझसे माँगकर ले जायेंगे
मेरी कविता
पता नहीं क्या
वे इसका बनायेंगे
और कहाँ-कहाँ
इसका पोस्टर चिपकायेंगे।
दु:ख, कविता और साइकिल
वे क्या कोई नया तिरंगा बनायेंगे
जिसको जिन्दगी के ऊँचे मकान पर लहरायेंगे
मुझे, देते हुए शुभकामना
क्या वे मुझे मेरे दु:खों से
हमेशा-हमेशा के लिए जुदा कर देंगे।

# खेती बारी

किसी दिन
बोया हुआ टमाटर
फलेगा
किसी दिन
एक नेनुआ निकल आयेगा
किसी दिन
जरूर धनिया की पत्तियाँ
हरी-हरी महकेंगी
किसी दिन
वह बच्चा
बड़ा हो जायेगा
उसकी छाती पर बाल उग आयेंगे
किसी दिन जरूर
उस आदमी के हाथ में
एक हथियार आ जायेगा।
देखो बन्धु!
आदमी को
बार-बार
उसके बीज होने की
याद दिलाओ
वह उगेगा
और पेड़ होने से
बचता हुआ
अच्छा खासा
लड़ाकू सिपाही
बन जायेगा।

# अर्थ-व्यवस्था

पृथ्वी भर की परिक्रमा करके लौटा
घर में सब्जी नहीं थी
पत्नी ने कहा।
पैसा नहीं था
जेब ने कहा।
उधार भी नहीं था
मित्रों ने कहा।
मैं अपने घर पर जा रहा था?
पृथ्वी मेरे पाँवों से बँधी थी
आँखों में आकाश था
पर सूर्य गायब था
हथेयिाँ ठंड से अकड़ रही थीं
(और चलते-चलते अपने पाठकों को यह बता दूँ कि,
ये जाड़े के दिन न थे)

# नींद मुझे नहीं आती

नींद जिन्हें आती है .
वे बड़े अच्छे लोग हैं
खुलकर उन्हें भूख लगती है
और दस्त भी उन्हें खुलासा होता है
वे खुलकर हँसते हैं
खुलकर बातें करते हैं
दो टूक राय है उनकी
वे या तो प्रेम करते हैं
या नहीं करते हैं
उनकी नौकरी पक्की होती है
बीबी भरोसेमन्द
बच्चे खुश-खुश
जैसे मैदान में उछलते गुलाबी गेंद
और बच्चियाँ
जैसे गणतन्त्र दिवस पर
सजाई गुडियों की तरह लड़कियाँ।
वे बड़े भाग्यशाली लोग हैं
मैं उनसे ईर्ष्या कर सकता हूँ।
नींद मुझे नहीं आती
पोर-पोर टूटता है
उठ-उठ कर बैठ जाता हूँ
मेरे वर्ग में जिन्हें नींद आती है
वे मेरे बहुत अच्छे मित्र हैं
मैं उनकी शुभकामनाओं के प्रति
ऋणी हूँ।

# साइकिल

धूप में खड़ी है साइकिल
धूप में खड़ी रहेगी साइकिल
धूप से बच नहीं सकती साइकिल।
साइकिल खुद से चलकर
छाँव में नहीं आ सकती
गो, वह ज्यादा चलती है
चलकर ही आ खड़ी है
पर धूप में पड़ी है साइकिल।
सड़क पर देखो
कितनी तेजी से भाग रही है
साइकिल
और वह एक बेचारी
धूप में मुतवातिर खड़ी है
धूप उसे बेहद परेशान कर रही है
उसकी पीठ जल रही हैं
पर जब खुद से नहीं चल सकती
साइकिल
तो अपनी रफ्तार के बावजूद
वह पड़ी रहेगी
दुनिया का कितना बड़ा आश्चर्य है
कि
धूप से भाग नहीं सकती साइकिल
किसी पेड़ के नीचे सुस्ता नहीं सकती साइकिल
खुद से वह पहिया घुमा नहीं सकती
घन्टी बजाकर
अपने मालिक तक को बुला नहीं सकती
साइकिल,
गो वह सैर करा सकती है

वक्त पर काम आने में उसका कोई जबाव नहीं
फिर भी धूप में
कितनी असहाय खड़ी है
साइकिल।

# ऑटोग्राफ

मेरी छोटी-छोटी इच्छाओं के शब्द
तुम्हें पढ़ने को मिल जायें
तो क्या होगा
क्या कोई स्वाद तुम्हें भी
अपना मिल जायेगा?
आश्वस्त करो
तो लिखूँ
बड़े-बड़े झुमके पहने
प्रेमिका लिखूँ
कि सटकर सब कुछ सौंप-सौंप देने वाली
कामिनी लिखूँ
कि जंगल में भय से भागे हिरनों की नाई
सतत् आत्मरक्षा के नन्तर
खुशी-खुसी का गीत लिखूं
कि टूट गये विश्वासों से
गीता बनकर निकले कुछ
छन्द लिखूँ
क्या लिख दूँ
मैं तुम्हारे
इस सुन्दर से
ऑटोवाले कागज पर
क्या लिख दूँ?

# बच्चा

बच्चा अद्‌भुत ढंग से खेलता है
और चीजों को दुनिया से
निकाल कर धर देता है
उस समय वे सिर्फ चीजें होती हैं
और बच्चा उनसे खेलता है।
हम बच्चों को खेलता देखते हैं
बच्चे को दुनिया में धर देते हैं
सामान्य ढंग से बच्चे को खेलते हैं।
बच्चा हमें अद्‌भुत ढंग से देखता है
चीजों को खेलता हुआ
हमारे द्वारा देखा जाता हुआ
हमारे द्वारा खेला जाता हुआ
वह शायद चेष्टा करता है
हमें भी चीजों की तरह
अद्‌भुत ढंग से देखते हुए
दुनिया से निकाल कर धर देना।

# बूढ़ा

बूढ़ा जीने की हर कोशिश कर रहा था
यद्यपि उसके प्राण काँप रहे थे
और वह भीख में पाये पैसे
बड़े जतन से संभाल रहा था।
उसने आखिरी कोशिश की
और सड़क पार गया।
उस पार ट्रक रुकी थी
पर अब भी घुरघुरा रही थी
बूढ़ा वहीं एक गिरी हुई लकड़ी
उठाने के लिए झुका था
और बस सब कुछ समाप्त हो गया।
उसकी कथरी अलग
उसका कटोरा अलग
उसके पैसे सँभालने वाला कोई नहीं था
बूढ़ा वहाँ आदमी जमा कर चुका था
पुलिस भी आ गयी थी
और अब बूढ़ा सरकारी वैन पर
अपनी महायात्रा पर
जा रहा था।

## गिरफ्तारी देने वाला शिक्षक

वह अब पुलिस की गाड़ी में
बैठ चुका था
और उसके गले में गेंदे के फूलों की माला
कुछ मुरझाने लगी थी
आज वह गिरफ्तारी देने वाले दस्ते की
सूची में था।
सुबह उसने पत्नी को
उसका कर्त्तव्य बताते हुए
जरूरी निर्देश दिया था और विदा ली थी।
पत्नी ने रोली लगायी थी
और बस खड़ी रह गयी थी।
शाम के पहले उसने
कई बार सम्बन्धित मंत्री के
मुर्दाबाद के नारे लगाये थे
और अब वह सूरज डूबने के साथ-साथ
जेलखाने की जिन्दगी की
अस्पष्ट कल्पना कर रहा था।
वह उदात्त हो रहा था
भावुक तो था ही।
उसे कुछ चिन्ताएँ सता रही थीं
राशनवाला कहीं उसकी अनुपस्थिति में
तकादे पर आया तो?
और बबलू को सर्दी का दौरा हुआ तो?
उसने शीश झटका
और बहादुरी के आदर्श में खो गया
वह अब पूरी तरह शिक्षक था
और संघर्ष करने वाली महानता के फूल
उसके नासा-पुटों को अनुरंजित कर रहे थे।

वह पहली बार जेल जा रहा था
जिन्दगी में पहली बार
और कचहरी के अहाते में
उसे ठीक से याद है तीसरी बार।
विनय और विद्या के मधुर संबंधों में
संघर्ष की भाषा की यह दीवार
वह कुछ भी स्पष्ट विश्लेषण नहीं कर
पा रहा था
वह शायद अपने को छोटा पा रहा था।
कुछेक सुविधाओं के लिए लड़ने की नियति के कारण।
उसे कुछ उद्धरण याद आ रहे थे
जिन्हें वह धन की व्यर्थता के लिए
कक्षाओं में उद्धृत किया करता था।
कंधे ज्यों के त्यों थे
और जिह्वा पर सरस्वती का
वास भी मुकम्मल था
सिर्फ वही पुलिस की गाड़ी में था
और उसके गले में लटकी
फूल की माला
उदास हो रही थी।

## कच्चे हैं दुख

कच्चे हैं दुख के घड़े
जरा सी सुख की फुहार
उन्हें तोड़ने के लिए काफी है
जरा सी तुम्हारी आँखों की असीमता
बस जरा सी चितवन की धार
तनिक सा ओठों पर मुस्कान की तरह आया अपनत्व
थोड़े से हिले तिनके
थोड़ी सी बही हवा
जरा सी अकुंठ उजास
उन्मुखी मुक्ति की साँस
थोड़े से उमड़ आये सुख के बादल
कितना बरस जाते हैं
कि लहलहा जाती है
मरुस्थल की कठिन खेती
तुमसे मिलने के अनन्तर
बिछुड़ने के अन्तर को मिटाते हुये।

# प्रक्रिया से गुजरते हुए

मैं चल नहीं रहा था
चलने के बारे में सोच रहा था
और धीरे-धीरे
यात्रा से बाहर कर दिया गया।
मैं खा नहीं रहा था
खाने के बारे में सोच रहा था
और खाने की मेज से
चुपचाप उठा दिया गया।
मैं प्यार नहीं कर रहा था
प्यार के बारे में सोच रहा था
और धीरे-धीरे वहाँ से
बाहर होता गया।
मैं जी नहीं रहा था
जीने के बारे में सोच रहा था
और जिन्दगी से बाहर होता गया
अब मैं सोचने पर सोच रहा हूँ
और चलना चाहता हूँ
खाना चाहता हूँ
प्यार करना चाहता हूँ
जीना चाहता हूँ
पर देखता हूँ
कि बहुत देर हो गई है
बाजार उठती जा रही है
इस रात में
सरायों के चक्कर लगा रहा हूँ
जहाँ कोई टिकने की जगह नहीं

# शाम को

शाम को कुछ टूटता है
मसलन एक आदमी
कोई जरूरी नहीं कि उसे
आप आदमी कहें
उसे एक चूल्हा भी कह सकते हैं
अपनी बटलोई की याद में
जो टूट जाता है,
अपनी छूटी हुई नौकरी की याद में
नवजवान के दिल की तरह।
आदमी टूटता है
वह वैसी ही कुछ किसी और चीज के लिए
टूट सकता है
मसलन, अपनी खोई हुई रेजकारी के लिए
कुछ टूटती है
जैसे नदी टूटती है
जैसे इच्छा टूटती है
जैसे टूटती हुई प्रेमिका को जोड़ने की कोशिश में
भाषा टूटती है,
शाम को कुछ टूटता है
आदमी के दिल में
याददास्त के खूबसूरत आइने की तरह
और हमेशा आइना पाने की
स्थगित अभीप्सा की तरह
कुछ न कुछ टूटता है
शाम को जरूर कुछ टूट जाता है।

## क्षमा-याचना

मेरे ईश्वर
मुझे क्षमा करो
मैंने हमेशा अपने ही खिलाफ
काम किया
तेरे खिलाफ कुछ किया होता
जो दण्ड तुम देते
स्वीकार कर लेता
मैंने तोड़े हैं अपने को खण्ड-खण्ड
मिटाये हैं, धूल में मिलाये हैं
अपने सपने
इच्छाओं की लताओं को
काट-काट कर फेंका है
और आज केवल
नौकरी करता, पेट भरता
बाल-बच्चों की परवरिश
करता, अन्याय सहता
चुप रहता हूँ
डर के मारे कुछ नहीं बोलता
बोलकर माफी माँगता हूँ
क्षमा करना
ईश्वर
मुझे क्षमा कर देना।

## पतझर करेगा पश्चाताप

चिड़ियों के पंख गिरा
नये पंख बिना दिये
जो चला गया मौसम
समुद्र पार अपनी गुफा में
पहुँचेगा
तब उसे याद आयेंगी
पत्तियों को विदाकर
उदास हो गई डालियाँ
झरे हुये फूल
पीले पड़े पत्तों का निरुपाय होकर
अपने वृन्तों को छोड़ना,
सब याद आयेगा,
अपनी बारी समाप्त होने की नियति के अनुरोध से
वह जायेगा, वसन्त के द्वार
उससे चिरौरी करेगा
अपनी लौटी हुई जगहों में
उसके जाने की विनती करेगा
और एक पूरे वर्ष करेगा पश्चाताप,
पतझर तब अकेला था
जब वह जंगलों में दहाड़ रहा था,
अब अकेला नहीं रहेगा, करता हुआ पश्चाताप।

# झुकी हुई औरत

झुकी हुई औरत
टेढ़ी होती है
गरदन पर बाल खोलती है
दिख गये मरद को देखती है
और अंदर भाग जाती है।
औरत जब मरद देखती है
तो अंग छिपाती है
मरद जब औरत देखता है
तो अकड़कर सीना फुलाता है
चिड़िया जब चिड़िया को देखती है
चहचहाती है
आदमी को देखकर
उड़ जाती है,
मैंने पेंड़ से पूछा
आप क्या करते हैं
आदमी को देखकर
मैं देखता हूँ कुल्हाड़ी नहीं है उसके पास
फिर आश्वस्त हो जाता हूँ।

# सुबह होती है

सुबह होती है
एक आदमी उठता है
खाँसता हुआ, ठंड से लड़ता हुआ
और नल पर जाता है
नल के नीचे बाल्टी लगाता है
एक औरत उठती है थकी हुई
साल में लिपटी
अंगीठी तलाशती
जिसमें वह अपने को कोयले की तरह
सजाती है
बच्चे नहीं उठते सबेरे
जगाये जाते, बड़बड़ाये जाते
स्कूल के नाम पर डराये जाते बच्चे
बच्चे नहीं उठते जल्दी
क्योंकि वे रोज जगाये जाते हैं
एक देश की तरह जो जगाये जाने पर भी नहीं
जागता, लंगड़ाता हुआ दफ्तर, कारखाना,
खेत, खलिहान में जाता है
और शाम को बतियाता-बतियाता लौट
आता है।

## इस साल औरतें

मैंने प्रेम करतीं औरतों का खटराग देखा है
उनका चलना, उठना, बैठना देखा है
उनके हाव-भाव, बात-बर्ताव देखे हैं
उनके सजने, सँवरने
दु:खी रहने, उदास हो जाने
और पल-पल बिखरने के
अन्दाज देखे हैं
मैंने सोचा भी है कि
काश ये औरतें मुझे प्रेम करतीं
अपने प्रेमियों को छोड़कर
पर कोई चर्चा नहीं की उनसे
और अपने ढंग से फिर उनके
प्यार में कभी कुछ सेंध मारे हैं
उन्हें विचलित किये हैं
उनके प्रेम के छक्के छुड़ाये हैं
औरतें इस साल
प्रेम में दुबली हुई
कुछ फूलकर कुप्पा भी हुईं
और कुछ ने अपने प्रेमियों
के साथ बड़े-बड़े पापड़ बेले
सारे जहान को उठाये आसमान को
शरमाये खानदान को, पाये वरदान को
सहेजे शहीदाने आस-पास को
कुछ ने बड़े इतमीनान से
सँजोया है
औरतें इस देश में
इस साल बहुत हो गईं
औरतें मार खाती, शर्म खातीं

और मरदों को मात करतीं
और हारकर नागिन की तरह फुँफकारतीं
और नाक में दम करतीं
बड़े ओहदे पर
लोगों को सिर के बल पर
दौड़ाती औरतें
इस पंचवर्षीय योजना में
मैंने बहुत देखीं
और इतनी देखीं औरतें कि
औरतों के स्वप्न देखना भूल गया।

# चिड़ियाँ और मैं

यह चिड़िया गाती है
मैं चुप रहता हूँ
चिड़िया को नहीं करने आती प्रार्थना
मैं करता हूँ
पर जब मैं ऐसा कह रहा हूँ
क्या चिड़िया भी जानती है
कि
मैं उसके बारे में कविता लिख रहा हूँ।

## छः सेठानियाँ

वे संख्या में छः थीं
उनके पाँव कार में चढ़ने के लिए
उठाये जा रहे थे
पर वे जैसे चलने के अभ्यास से
लगभग मुक्त हो गये थे
इसलिए लगभग घिसट रहे थे
उनके नितम्बों के बोझ
बेचारे शूद्र पाँव कैसे ढो रहे थे,
यह वेदकाल से लेकर अब तक की
कहानी है, किस्सा कोताह—
पिंडलियाँ कमर के लिए भारी थीं
नाभि के लिए पयोधर वक्ष
और यदि कुछ आसानी में थे
तो-महज सिर
और उनके चिकने गाल
जो दबाव से मुक्त थे
और शरीर के पूँजीपति।
बेचारे दिल पर
अधिक रक्त सप्लाई का बोझ था,
और मैं सोचने लगा कि
ये सेठानियाँ
क्या धरती के लिए भी भारी पड़ रही हैं।
वे पचास के आस-पास की रही होंगी
ज्यादातर मुक्त और केवल टी० वी० कैसेट,
बुनाई, कालीन, हीरे, की अँगूठी और
ब्यूटी पार्लर उनके जेहन में था,
मैं हैरान बिल्कुल नहीं था

केवल एक घर के गँदले से नौकर
के लिए चिन्तित था
जो इतना दौड़ लगा रहा था कि
अच्छा खासा
घी में पकाया खाना भी
उसे दिन-दिन
दुबला करता जा रहा था।

# बुद्धिजीवी

इन्हीं दिनों के लिए
क्या हम बुद्धि बेचते रहें कि
एक दिन हम
खुद खरीददार की हैसियत में आ जायेंगे
वे तो कह गये थे
हमारे पहले वाले लोग
कि बेचने से नहीं घटती
बुद्धि
पर यह क्या
बुद्धि तो एक बूँद भी नहीं रही
अब किस चीज को बेचकर लायें
घर में आटा-दाल-नमक
अब तो बस नाम रह गया है
कि हम थे बुद्धि के आढ़तिया
मुनीम जी घर चले गये हैं
वेतन देने को न रहा
रसोइया अपने घर का ही
चौका चूल्हा देखता है
और महराजिन ने पान की दूकान
कर ली है,
हमारी जिन्दगी जो बची है,
उसकी चिन्ता
मेरी बची हुई किताबें कब तक करेंगी
देह का क्या है,
उसके अन्त का समय है
पर मैं बुद्धिजीवियों से कह जाना चाहता हूँ
कि इतना न बेचें अपनी बुद्धि
कि पैरों के नीचे की जमीन ही खिसक जाये।

# प्रेम के मामले में

मौन रहा जाना हितकर था
सुपाच्य भी
पर हमेशा मीठी गोलियों की तरह
भाषा का इस्तेमाल हुआ
प्राकृतिक गुलाब पर सुबह की
ओस-बिन्दुओं की तरह
लिखी गई कुछ कविताएँ
और कभी रो-रोकर
वन में पात गिरा देने वाले
छेड़े गये संगीत के कसक भरे स्वर।
कुछ देह पर मरते रहे कवि
और कुछ आत्मा के लिए खोजते रहे शब्द
प्रेम अमर पहले भी नहीं था आदमी की तरह
पर आदमी अपनी आदत के अनुसार
अमरता का दम हमेशा भरता रहेगा।

## मेरे लिए

चलते-चलते
एक पक्की इमारत
पर पहुँचे
तो
लगा दरवाजा
हमेशा के लिए
बन्द हो गया है
लौटने के लिए
पूरा का पूरा जंगल है
रात वसर करने के लिए
एक कुटिया भी नहीं
इतनी रात गये कहाँ जाऊँ
किस दरवाजे पर दस्तक दूँ
जो खुल जाये
इसलिए प्रतीक्षा करूँगा
कि वह सुबह फिर हो
जिसमें
तुम्हारा दरवाजा खुल जाए
बाहर से
उजली धूप आये
साथ साथ मेरे
लिए
एक
गुलाब
जिसमें कहीं कोई
पछतावा न हो!

# चौतरफा सुबह

रातभर लिखता है
कोई अदृश्य
सबकी तकदीर
सुबह अपनी-अपनी
जिन्दगी की पटिया पर
लोग अलग-अलग इबारत पढ़ते हैं,
किसी बेरोजगार की नौकरी मिल जाती है
किसी नवजवान को बेबस लौट आना पड़ता है,
कोई स्त्री चौतरफा मार खाती है
कोई बूढ़ा चल बसता है
कुछ अघटित भी हो जाता है,
कहीं किसी मदार में
गुलाब
और किसी बाँस में
कमल
कवि चिड़िया की तरह चहचहाता है
कोई सुनता है
कोई अनसुना कर जाता है।

## मकान

आदमी के ऊपर छत होनी ही चाहिए
वह घरेलू महिला
हमेशा मिलने पर कहती है
उसका बंगला नया है
उसके नौकर उसके लान की सोहबत ठीक करते हैं
और वह अपने ड्राइंगरूप को
हमेशा सजाती रहती है।
मैंने नीले आसमान के नीचे
खड़े होकर अनुभव किया
कि छत मेरे सिर से शुरू होगी
या मेरे सिर के कुछ ऊपर से
जब मैं मकान बनाऊँगा,
मैं अब मकान हो गया था
और मेरी इन्द्रियाँ जंगलों की तरह
प्रतीक्षा करने लगीं थीं
मैंने सोचा
यह रहे मेरे नौकर-चाकर
मेरे हाथ और पाँव
यह रहा मेरा दरवाजा मेरा चेहरा
यह रहा मेरा डाइनिंग रूप
मेरा पेट
यह रहा खुला हुआ मेरा
बरामदा
मेरी छाती,
यह रहे कैक्कटस कटीले
मेरी दाढ़ी-मूँछ
और यह रहा मेरा दिल
मेरा ड्राइंग रूम,

मैंने पूरा मकान मिनटों में
खड़ा कर लिया था,
और अब मैं आराम से
सैर पर जा सकता था,
जेब में मूँगफली भरे हुए
और चिड़ियों से मुलाकात करते हुए।

# तिनका

मैं न छाल था
न तना
न पत्ता
फिर जानें कैसे
जंगल के उस खूबसूरत
पेड़ के पाँवों पर पड़ गया
पेड़ ने मुझे इतनी देर तक बर्दाश्त किया
यह उसकी उदारता थी
और अब मैं हवा में उड़ने से पहले
उसकी ओर मुखातिब हुआ था
अपेक्षा मेरी आँखों में जरूर थी
पर मैं ठहरा तिनका
बेचारा तिनका, पेड़ की मुझसे क्या
मैं उड़ सकता था, जा सकता था
हवा मुझे जहाँ चाहे ले जा सकती थी।

# घाटी

यह घाटी उदास और
बुझी हुई है
आज पंछी शोर मचाते नहीं
सिर्फ थकान की रेखा खींचते
इसमें शरीक हुए
और खो गए
घाटी ने उनका आना अनुभव नहीं किया।
अपलक देखते रहे पर्वत
ऊँचाई की आँखों से
निश्चल देवदारु
झरने के रूप में बहते रहे
घाटी, इसलिए उदास है
कि यात्रा नहीं करती वह
यात्रा की साक्षी रहती है,
घाटी बोलती नहीं
सिर्फ हवाओं को मनमानी
करने देती है
और जिन्दगी से दूर हुए
लोगों को
आत्महत्या करने का मौका देती है।

# काली रात में अकेलापन

इस अकेलेपन से बचने के लिए कुछ लिखा जाय
क्योंकि शब्द हमारे लिए
कंगारू के थैले हैं
जिनमें हमारे भाव-शिशु दुबक सकते हैं,
इसलिए इस कालीरात को लिखने से
बचने के लिए कुछ लिखा जाय।
अजीब है यह इच्छा
कि लिखने से बचने के लिए लिखा जाय।
हाँ तो, एक-एक कर उठाता हूँ काले शब्द
काली रात, साँवले समुद्र की तरह हरहराती रात,
नींद में बड़बड़ाती रात, झकझोरती रात
यादों के चेहरे याद करती रात,
यानी कि यह रात अपनी बेहद गहराई में
ढकेलती ही जाती है
इसलिए अब अकेले के पक्ष में
बयान दिया जाय
यानी कि कुछ लिखा जाय।

# रचने दो अँधेरा

रचने दो अँधेरा
आस-पास मुझे
डूबने दो उसी में
उसी में, उसी में, डूब जाने दो।
डूबने में शांति नहीं मिलेगी
जानता हूँ
गहराई में उतरने में
और अँधेरा ही मिलेगा
जानता हूँ
फिर भी उतरने दो।
होने दो मौन मुझे सर्वथा
ऐसा कि एक-एक अन्तः का टुकड़ा भी
चुप्पी के बर्फ सा जम जाय
जानता हूँ, आयेगी जड़ता
पर इसी जड़ता में मुझे ठहर जाने दो।
ओ री हवाओं अन्यत्र बहो
यहाँ नहीं है रन्ध्र
बंद कर दिये मैंने जाने-पहचाने सब द्वार
अब गुफा में बैठा हूँ
बाहर चट्टान का दरवाजा
भीतर मैं गोल-गोल ठोस
अँधकार के गोले रचता हूँ
गुफा को उन्हीं से भरता हूँ
एक दिन गुफा भी भर जायेगी
जानता हूँ
साँस रुक जायेगी
जानता हूँ
पर तब भी क्या
अँधेरे को रचने की इच्छा मर पायेगी ?

# कृपया धीरे चलिए

मुझे किसी महाकवि ने नहीं लिखा
सड़कों के किनारे
मटमैले बोर्ड पर
लाल-लाल अक्षरों में
बल्कि किसी मामूली
पेन्टर कर्मचारी ने
मजदूरी के बदले यहाँ वहाँ
लिख दिया
जहाँ-जहाँ पुल कमजोर थे
जहाँ-जहाँ जिन्दगी की
भागती सड़क पर
अन्धा मोड़ था
त्वरित घुमाव था
घनी आबादी को चीर कर
सनसनाती आगे निकल जाने की कोशिश थी
बस्ता लिए छोटे बच्चों का मदरसा था
वहाँ-वहाँ लोकतांत्रिक बैरियर की तरह
मुझे लिखा गया
'कृपया धीरे चलिए'
आप अपनी इम्पाला में
रुपहले बालोंवाली
कंचनलता के साथ सैर पर निकले हों
या ट्रक पर तरबूजों की तरह
एक-दूसरे से टकराते बँधुआ मजदूर हों
आसाम, पंजाब, बंगाल
भेजे जा रहे हों,
या मेटाडोर से रंग लेने निकले हों
मैं अक्सर दिखना चाहता हूँ आप को

'कृपया धीरे चलिए'
मेरा नाम ही यही है साहब
मैं रोकता नहीं आपको
मैं महज मामूली हस्तक्षेप करता हूँ,
प्रधानमंत्री की कुर्सी पर
अविलम्ब पहुँचना चाहते हैं तो भी
प्रेमिका आप की प्रतीक्षा कर रही हैं तो भी
आई०ए०एस० होना चाहते हैं तो भी
रुपयों से गोदाम भरना चाहते हैं तो भी
अपने नेता को सबसे पहले माला
पहनाना चाहते हों तो भी
जिन्दगी में हवा से बातें करना चाहते हों तो भी
आत्महत्या की जल्दी है तो भी
लपककर सबकुछ ले लेना चाहते हों तो भी
हर जगह मैं लिखा रहता हूँ
'कृपया धीरे चलिए'
मैं हूँ तो मामूली इबारत
आम आदमी की तरह पर
मैं तीन शब्दों का महाकाव्य हूँ
मुझे आसानी से पढ़िये
कृपया धीरे चलिए।

# वरेण्य प्यार

प्यार एक दाता है
दिया और दिया
जीने दिया।
प्यार एक शोषक है
लिया, लिया
रक्त तक चूस लिया।
प्यार में सपने ही नहीं
तथ्य भी सुगन्धित पुष्प हैं,
उद्यान ही नहीं
प्रतीक्षा की बेंचों पर भी
लगाव के संगीत
सुनाई पड़ते हैं;
किन्तु यह प्रवाह जब रुकता है
तो लगता है
सब कुछ गया, गया, गया।
पुनरपि प्यार
वसन्त के नवयुवक मन-सा
उमड़ता है,
वरेण्य होता है
प्रतिक्षण, प्रत्येक में।

# याद

एक शब्द उठाता हूँ
फूल
वह
पंखुरी-पंखुरी झर जाता है,
एक बिन्दु छलकता है
जल
और वह बर्फ़ बन कर जम जाता है,
एक याद उठाता हूँ
झुकी पलकों से
आँखों से चिड़िया उड़ती है
और नीली कल्पना के जल में
व्यथा की और लहरें उत्पन्न हो जाती हैं।

## ज़रूर

वहाँ तुम ज़रूर सूने हुए होगे
प्रकृति का यह बरसाती रुख
तुम्हें ज़रूर अकेला कर गया होगा।
वहाँ तुम ज़रूर पिघले होगे
और मेरा टूटना अखर गया होगा,
वहाँ जब भी ज़िन्दगी गहरी हुई होगी,
तुम ज़रूर गहरे मौन में डूब गये होगे।

# हम पेड़ों के बीच

हम जहाँ खड़े हैं वहाँ सब पेड़ ही पेड़ नज़र आते हैं
गो यह जंगल नहीं है
न कोई सुनसान
एक नदी कुछ दूरी पर अवश्य है
कभी-कभी उस की क्षीण आवाज़ खामोशी तोड़ती है।
इसी जगह रहते-रहते हमें अर्सा हो गया
इस दौर में कई बार ऋतु-परिवर्तन हुए
और पेड़ों की टहनियों में शुष्कता, प्रौढ़ता
और ढीलेपन की कई एक परतें
अपनी सूक्ष्म पहचान अंकित कर गयीं।
सब समय-सा निस्संग अपरिवर्तित परिवर्तन में घटित होता गया
मेरी आँखों और इन पेड़ों को एक-दूसरे में परावर्तित होते हुए
हम भी सोच रहे थे
अब और अधिक चलने से अच्छा है, पेड़ों के बीच एक जगह
तलाश करके, संख्या का गणित ठीक करना,
पर पेड़ हैं कि मौन में स्वीकार की जगह
अस्वीकार कहते-से लगते हैं
और सन्नाटे का रंग हमें देख कर कुछ बदला लगता है।
सिर्फ़ हवाएँ, पत्तियाँ और दूरवर्ती नदी के
दोनों तट हमारी सहानुभूति में हैं।
हम पेड़ों में जब नहीं शामिल होना चाहते थे,
तो भी वे हमारी नेकनीयती पर सन्देह करते थे
और अब, जब शामिल होना चाहते हैं,
तब भी।

# एक दिन

एक दिन हम नहीं रहेंगे
क्या हुआ
लोग तो रहेंगे
सुख पाते
मिल बैठ हंसी के लड्डू
बाँटते
दुखों की चर्चा करते
गये और रह गये
प्रियजनों को बिसूरते
स्मरण करते
देह में प्राण से अगोरते
अपने अच्छे दिन
ग्रह गोचर विचारते
बीबी बच्चों की परवरिश करते
छोटे-छोटे बच्चे दुलराते
बूढ़ों का आदर करते
माताओं के चरणों में शीश धरते
एक दिन हम नहीं रहेंगे
पर रहेंगे लोग
अपनी-अपनी प्रियाओं के संग
यहाँ तक कि नाग-नागिन भी
बंजारा बंजारिन भी
पात और पुरइन भी
बाघ बाघिन
नद नदी
पुजारी पुजारिन
सब रहेंगे
घाटों पर धोयेंगे बड़े भोर

धोबी-धोबिन कपड़े
गायेंगे गीत मछुआरे
हम नहीं रहेंगे
अपनी चिता में हमारे जैसे
कई जन जलते हुए
धुएँ से उठेंगे
पर बादल बन बरसेंगे भी
असीसते पृथ्वी के प्राणियों को
एक दिन हम नहीं रहेंगे
क्या हुआ
सूर्य रहेंगे
चंदा मामा
सलमा सितारों की साड़ी पहने
रात रहेगी
फूलों में हँसी की भोर रहेगी
पूंछ हिलाती चिड़ियाँ रहेंगीं
अलगनी पर हमारे कपड़े रहेंगे
चूल्हों में धुआँ रहेगा
रोटी नमक रहेगा
हरी-हरी सब्जियाँ रहेंगी
रंग-बिरंगे फल रहेंगे
मंदिरों में घंटे बजते रहेंगे
मस्जिदों में अजान रहेगी
बड़े मियां की दाढ़ी रहेगी
और पंडित जी की चोटी रहेगी
सब रहेंगे
एक हम नहीं रहेंगे
दुनिया तो रहेगी
क्या हुा सब तो रहेंगे
एक हम नहीं रहेंगे।

# प्रत्यावर्तन की प्रार्थना में

जैसी भी है जिन्दगी
वापस करनी है मुझे
दुनिया को
बिना लिए
किसी की भी जिन्दगी
कितने भी दु:ख हों चमड़े पर
घावों से
आत्मा के अंदर चाहे जितने छेद हों
चाहे कितनी दुत्कार मिले
हलवाई
कसाई
और पालगन पंडित के द्वार से
लावारिश ही सही
मुझे कुत्ते की भी जिन्दगी वापस करनी है
गदहे की भी
जो दिन भर खड़ा रहता दूसरे, तीसरे,
चौथे
गदहों की गिरोह में
एक ही ढब में
साथी को चाटता
धाड़ता दुलती
चिंग्घाड़ता
गोया शहर या कस्बे में
दंगा हो गया हो
और उसी के शावक गर्दभ कुमार के
पेटमें भोंक दिया गया हो चाकू
दावाग्नि के बाद भी

बच गई हरी पत्तियों
और कोपलों
और न सही पेड़ों,
बीजों जड़ों
और चट्टानी जलों की तरह
जिन्दगी वापस करनी है मुझे इस दुनिया को।
दिनभर
जब थक कर चला जाता सूर्य
धुएँ अपनी आखिरी
जहरीली जिंदगी
हवा में उछाल देते हैं
भागते टेम्पुओं, रिक्शों, मोटरों
ट्रकों, दुपहिया वाहनों
और बेवाई फटे पांवों की
धूल के बीच से बचता
भागता उड़ता
बदहवास
सुन्दरियों की भीड़ में
कुचों से टकराता
लौटता जो कोई
नव जवान बेरोजगार
अपने घर
दुनिया जैसे उसे
वापस करती है
आधे अधूरे
पाये अनपाये
सपनों से बने छत वाले घर को
मैं भी वापस कर देना चाहता हूँ।
थनों से झरते
गायों के बछड़ों के लिए कच्चे दूध
सा

जीवन
मैं पा-पाकर वापस और वापस
करना चाहता हूँ
जीवन
जो मेरा न था कभी अकेला
न किसी का अकेला
साझे का जीवन
साझे में जीना चाहता हूँ।
सिर्फ कविता में ही नहीं
भूख के बरक्स
प्राणाकुल प्रतीक्षा
भागदौड़
तृप्ति और जिजीविषा
सब वापस करना चाहता हूँ।
जिन्होंने दिया मुझे जन्म
जिन्होंने भी दिया मुझे
अच्छा बुरा नाम
जिन्होंने भी दिया मुझे
नदी, कुआँ, पोखर
मटका या बाल्टी
चूल्हा
आग
चारपाई
उन्हें में वापस करना चाहता हूँ
जैसी भी है यह
जहाँ भी है यह
जिसके हिस्से में भी रास आ रही है
और जिनके हिस्से
नहीं भी आ रही है
कैंसर, एड्स, कोढ़
और कट गये आधे से अधिक

अंगों वाली जिन्दगी
कम समय के लिए सही
एक क्षण के आधे के लिए ही सही
जिस किसी की अनिवार्य
जिंदगी को मैं वापस करना चाहता हूँ।
मौत के खिलाफ
एक निहत्थे कवि का प्रलाप ही सही
वापस करना और होना चाहता हूँ
जिंदगी को, जिंदगी में
जीवित हर मनुष्य के लय के साथ।

## नए वर्ष के आगमन पर

उसी तरह फिर चले आए नए वर्ष
पहले तो वर्ष भर के गए होते थे
इस वर्ष हजार वर्ष बाद आए हो
नए वर्ष!
न फूल, न पत्ता
न सूरज, न जुन्हाई
हाथ में नहीं तुम्हारे
एक किलो मिठाई
यों ही दुबके कुहरे में आ गए
लगता है हजारों वर्ष तक
सहते रहे विपत्तियों की मार
मेरे घर आ गए।
आए हो तो बैठो
चाय पिओ
थके हो लंबी यात्रा से लौटे हो
कमाऊ पूत के घर
आरामदायाक धोती या लुंगी पहन लो
चारपाई डाल देता हूँ
थोड़ा विश्राम करो
गरम करा के देता हूँ पानी
मल-मलकर नहा लो
कितने ही युद्धों, भूकम्पों
अन्यायों, अत्याचारों
बच्चों की बीमारी और भूख से मृत्यु
देख, लौटे हो
बूढ़े काका
अपने एक बेटे के घर
थोड़ी सेवा स्वीकार करो।

हाँ, जाना तब वहाँ
जहाँ मिलेनियम मनाया जा रहा है
धूमधाम से,
नाच रहे हैं कौरवों के पुत्र
पांडवों को मारकर
द्रौपदी विभूषिता जहाँ
दुर्योधन के वाम पार्श्व में।

# वसंत : कुछ छवियाँ

## एक

यह भी एक वसंत है
कि अब हवा हो रही हैं
तुम्हें पाने की इच्छाएँ
तुम्हें अपने में समेटने की इच्छाएँ
या कि तुममें खो जाने की भावनाएँ
मुझे न कोई बुलाता है
न मैं कहीं जाता हूँ
न स्वागत करता हूँ
यह भी एक वसंत है कि
कोई चिड़िया नहीं बैठती
शाख फैलाए खड़ा रहता है वृक्ष
फूल खिले होंगे कहीं
गंध उड़ रही होगी
पर यहाँ नहीं है वसंत
सिर्फ दरवाजे खुले हैं
आने वाला कोई और होसकता है
वसंत नही।

## दो

पतझरों के पार
यदि वसंत कहीं होगा तो होगा
अभी तो धूल है, धमाका है
खून है, गोली है
बेहद ईंट-पत्थरों के
बनते मकानों के पार
यदि वसंत कहीं होगा तो होगा
अभी तो

उदासी है
प्यास है
बवेला है
रोज-रोज की वही पुरानी बातें हैं,
सड़ी हुई दुनिया के पार
यदि वसंत कहीं होगा तो होगा
अभी तो कुछ भी नहीं है,
कहते हैं वसंत की रानी
जब नहाती है
रस बहता है
रोली बिखर जाती है
फूल खिल जाते हैं
हाथ-पाँव उजले-उजले
लाल-लाल
कमल वन सरोवरों
में खिल जाते हैं
संसृति के सीने में
मनसिज घुस जाता है
प्रकृति-पुरुष का
पसीना महक जाता है
पर ये सुनी-सुनाई
बातें हैं
यहाँ तो धूंध है
किरकिरी है
शहर की गलियों में
वसंत की खोज
हो रही है,
सुना है कल
मनाएँगे भद्र जन
वसंतोत्सव।

## तीन

दिलों में विश्वास लेकर
छाती में नि:श्वास लेकर

वह महीनों से गया
न लौटा वसंत आने वाला है,
देखना, जब वसंत आए
तो धोती पीली पहनना
साड़ी को केसरिया रँग लेना
और न जुगाड़ हो
कंचन-सी काया का
तो एक फूल किसी के यहाँ से तोड़ लेना
जूड़े में खोंस लेना
वसंत आने वाला है।
मित्रो, अपनी-अपनी बस्तियों
गाँवों, खेतों, तालाबों
और अपने-अपने हिस्से के
पृथ्वी के तमाम कोनों में
घूम-घूमकर कोयल का यह संदेश
सुना दो कि वसंत आने वाला है,
नदियों में निर्मल जल लेकर
पहाड़ों के दरख्तों पर
मीठे-मीठे फल लेकर
वसंत आने वाला है
देवी सरस्वती का स्वर लेकर
वसंत आने वाला है।

## प्रश्न है वसंत से

कविता तुम्हारी क्या लगती है
वसंत ?
शब्द रस भरे
अलंकार मधुपूरित
छंदों में टपक रही
आम्रमंजरियों-सी महक
रमणी तुम्हारी क्या लगती है
वसंत ?
क्यों खोल देती है केश घने
क्यों लुनाई उतर आती है पग थलियों में
नितंबों में उभार
वीणा सा बजता है
कंठ में गिटार
और छेड़ दे तो सितार
संगीत की देवी तुम्हारी क्या लगती है
वसंत ?
दिन भर उड़ती धूल विरह के पंथी की आँखों में
किर-किर
सारा वैभव उदास मंदिरों में बजते घंटों में
एक अनाम रुदन
बिछुड़े और टूटे मन
तुम्हारे क्या लगते हैं
वसंत ?
तुम नहीं उत्तर दोगे
हरे-हरे पात निकले
झरे-झरे ठूँठ वृक्ष
बौराया उन्मन नवजवान
बचपन तोड़कर यौवन-दहलीज पर

दस्तक देने के लिए आतुर
किशोरी की दृष्टि में प्रवेश करते
कुचाग्र उत्तर देंगे
इन सबके तुम क्या लगते हो
वसंत ?
तुम्हारा वसंत कभी नहीं बीतेगा
जब तक मैं हूँ
और अनारों के अंदर
गुलाबी दाने हो जाना
शहतूत के अंदर
अपने ओठों के
रहस्यमय स्वाद की तरह
भ्रती रहना मेरे भीतर।
सुबह उठना
ताजगी की तरह
और शाम को हाना
शराब की तरह
तुम्हें खत्म नहीं होना है कभी
दुनिया की किताब से
न कपूर सा उड़ना है
न गायब होना है
किसी सामान सा।
मेरे भीतर और कुछ
होते जाना है
जैसे एक आत्मा निरंतर
नए जन्म लेती है
एक और आत्मा के रहस्य में।

# सौदागर वसंत

वसन्त सौदागर की तरह
मेरे गाँव आया था
जो खरीद नहीं सकते थे
वे कम से कम देख रहे थे
पेड़ सब फूले नहीं समा रहे थे
और वनस्पतियाँ अपनी
छाती में छुवन महसूस कर रही थीं।
लोग-बाग प्रकृतिरथ होना चाहते थे
और चरित्र पर बेहद बल देने वाले लोग
कुछ निरुपाय से हो रहे थे
ठीक उसी समय एक पुकार आई
पपिहरे को पुकार की तरह
और चैत की हवाएँ
कुछ ज्यादा बेचैन हो गई
वसन्त अपना सौदा समेट रहा था
नदियाँ अपने घर जा रही थीं
पत्तियाँ सयानी हो गई थीं
और फूलों की नियति पहचानकर
टहनियाँ
कुछ-कुछ उदास।
सौदागर फिर आयेगा
रंग-बिरंगे सामान लेकर
पर जायेगा भी
और यह क्या मेरे गाँव को सुहायेगा?

# गुंडे

पहले वे तुम्हारे लिए आए थे
इसलिए मैं चुप था
अब मेरे लिए आए
तुम चुप रहे।
अब दोनों के लिए आए हैं
हम दोनों चीख रहे हैं,
पर शेष चुप हैं।
वे शताब्दी पर हमला कर
उसे परास्त कर चुके हैं
और परास्त होने के पहले
वह चीख चुकी है
चुप होने के लिए।

# स्त्री

स्त्री ही रहती है
यहाँ और वहाँ
बाकी सब
या तो बच्चे हैं
या पति।
स्त्री का बल्ब जलता है
अँधेरे में निकलता आदमी
सड़क पर रोशनी पाता है,
घरों में
अँगीठी की तरह जलती है
स्त्री
रोटी और दाल
चावल और पकौड़ियाँ
सब उसकी देह की
लीलाएँ हैं
और घरेलू उत्सव
वे तो स्त्री की विवक्षाएँ हैं
धन्य है स्त्री
दुनिया को हर क्षण
जन्म देती हुई।

## धूप में बैठे हैं दो जन

धूप में बैठे हैं दो जन
धूप में खड़े हैं
दो वृक्ष
दो छोटे पौधे
एक छोटा और पौधा
बड़े वृक्ष की छाया से आक्रांत
उसे नहीं है अवसर
कि जाड़े की धूप सेंक ले
निकाल ले मुक्त अपने हाथ-पाँव
अँगड़ाई ले ले
पसार ले अपने हाथ थोड़ी दूर तक
पाँव तो धरती से रस पीने में
फँसे हैं।
सभा छोटी नहीं है
दो जन, दो वृक्ष
एक पौधा
इसी में दो पक्षी भी
आ गए
उड़कर पंखों पर आए
और पाँवों पर बैठ गए
पर उनसे रुका रहना
स्थिर कहीं एक जगह
मुश्किल है
फुदक रहे इसलिए
दो और जन
दो और पक्षी
सभा में शांति है
सन्नाटा नहीं है

पवन का प्रवेश है
धूप का राज्य
और आकृतियाँ
जीवन-ऊष्मा ग्रहण कर रही हैं।
ऐसे में
दो अन्य पक्षी
आगंतुक से
कितने अच्छे लगते हैं,
इतना कहना था कि
साथी ने कहा—
'कविता करते हो'
मैंने कहा—
'अरे भाई
कविता इसमें कहाँ है
सिर्फ दो पक्षी
दो छंदों की तरह सूझे
साँवले, स्फूर्त
जीवंत, मैं डूब गया
देखने लगा
उनका जीवन-रूप
तुम्हें क्या बताऊँ
कि कविता क्यो होती है
शब्द कितने गहरे में होते हैं
डूबने और मरने से पूर्व
कभी जीवन भी नहीं मिलता
कविता क्यो मिलेगी!'

## संध्या का अपना रथ है

संध्या चुप के बिना
कैसे आ सकती है
आएगी तो निश्चय ही
शब्दों को गूँगा करती हुई
संध्या का स्वभाव है
चुप कर देना
जैसे आततायी चुप कर देता है
भोलीभाली जनता को।
संध्या यह दौड़ती नहीं
सभी के आगे
उदासी सी खड़ी हो जाती है,
घर में नमक न होने
जेब में पैसा न होने
उधार न मिलने
प्रेमिका के टूट जाने
दर्द की शक्ल में
या किसी-न-किसी
इसी तरह के दूसरे दु:खों की तरह
संध्या
बेहद गमजदा करती है।
वे जो हँस रहे हैं
फौआरों के पास
गोलगप्पों को निवाला बनाते
कोका कोला पीते
सुंदर स्त्रियों को घूरते
और अपने बच्चों की
फरमाइश पूरी करते,
ऐसा मत समझना

वे उदास नहीं हैं,
वे अपने आसपास
शोर मचा रहे हैं
गोया वे उदासी को
निकाल फेंकेंगे दुनिया से।
मेरे सच्चे मित्रों
कभी रात में
इनकी खिड़कियों से झाँककर देखना
वे शाम की उदासी की स्मृति को
किस तरह रोते हैं
संगीत के कैसेटों के साथ
और कई तो बेहोश कर लेते हैं
अपने को
स्थगित कल के लिए।
संध्या का अपना रथ है
अब, जरूरी नहीं कि
उसके लिए रूपक का
विधान ही किया जाए।

# शुक्रिया मेरे शब्दों!

यह तो ईश्वर की कृपा है
कि कुछ शब्द हैं मेरे पास
जिन्हें मैं लिख सकता हूँ
सई साँझ
जब उदास होता हूँ
और तुम्हारी यादों की रात
आहिस्ता-आहिस्ता
दस्तक देती है।
शुक्रिया मेरे शब्दों,
तुम ले आते हो
गमजदा दिल में
खुशी की आँखें
बेला के फूलों की हँसी
और मुलायम स्पर्शों की ताजगी
खुशबू
और प्यार से बनी एक औरत।
शुक्रिया मेरे शब्दो!
मुझे तुम मिल जाते हो,
उसके न मिलने पर।

# उदास रहने का दिन

मित्रों से कहो
कल आएँ
आज उदास रहने का दिन है
अखबार न पढ़ने का
सैर पर न निकलने का
हवा से न मिलने का
फूल-सा न खिलने का।
मित्रों से कहो
कोई हादसा गो नहीं है
पर चुप होने का दिन है
एक तख्ती लगा दो
दरवाजे पर
आज दिन न मिलने का
बात न करने का।
मित्र होंगे तो बुरा न मानेंगे।
जो माने बुरा
आज दिन है उन्हें मित्र न मानने
का।

# जाड़े का दिन

छोटे होते हैं
और कुछ मानों में उबाऊ
बुने जाते हैं स्वेटर की तरह
पहने जाते हैं कोट की तरह
गरमाए जाते हैं कमरे की तरह
पर हमेशा कुछ छोटे ही रह जाते हैं
अपनी आगामी संतानों की
तुलना में।

# आज वसंत पंचमी है

एक तोरण ही सही
आम के पत्तों
रस्सी का
तान दो
आज वसंत पंचमी है।
एक पीली धोती मैं
पहनता हूँ
एक पीली साड़ी तुम पहन लो
कमरे में पीले फूलों का
एक गुलदस्ता रख दो
आज वसंत पंचमी है।
मर गए लोग
उन्हें याद कर भी
बँध गए लोग
उन्हें याद कर भी
जो बचे लोग हैं
उनकी खुशी के लिए
एक फाग गा लो
आज वसंत पंचमी है।
थोड़ी ढोल कस लो
थोड़ा मजीरा बजा लो
थोड़ा गुलाल छिड़क दो
शिवलिंग पर
आज वसंत पंचमी है।
शहर उदास हैं
गँवई-गाँव
खस्ता हाल
लोगबाग बच्चा जवान

प्रायः सभी निढाल हैं
बूढ़ों की बात सुन लो
वे जैसा कहें
वैसा ही मना लो
आज वसंत पंचमी है।

# 'झोला लिए आदमी'

बहुत बेहूदा लगता है,
झोला लिए आदमी।
स्वार्थी, संकीर्ण,
लोभी, पारिग्रही
और कुछ हद तक क्या,
कुछ उठाऊँ ले जाऊँ।
बहुत बेहूदा लगता है,
झोला लिए आदमी।
कंधे पर लटकाए,
या हाथ में झुलाए
बाज़ार जाये,
या घर में लिए आये
तुन्दिल तक तो गनीमत है,
और जाकेट या पाकेट तक भी क्षम्य
बड़ा-बड़ा थैला अंटी में संभाले,
बेहद घोंचू और मनहूस लगता है
झोला लिए आदमी,
क्यों लगता है जानता नहीं मैं स्वयं
लोभ लटका है कंधे पर
सिलाता पाकेट सा जाकिट मैं
तोंद तो बस अधिक कुछ
जीमने का प्रतिफल है
आदमी यह जानवरों से गया बीता
झोला रखता है
पेट फुलाता है
पाकेट सिलवाता है
और यहाँ तक कि घर बनवाता है
कोठरी, ताला, कुंजी

तहखाना दुछत्ती
मुझे आदमियों से घृणा होती जाती है
जैसे जैसे
देखता उनकी हरकतें
बढ़ता ही जाता है अनुराग
पशुओं-पक्षियों
और यहाँ तक कि कीड़ों से,
कुछ पक्षी
और कुछ कीड़े
आदमियों से सीखें हैं अनेक गुर
उनके लिए करो प्रभु से प्रार्थना
शेष वनस्पतियाँ
और पेड़ों-से और करना है
मुझे प्रेम
मुक्त हैं जो जीते जी
साधुओं और पंडों की तुलना में।

# समुद्र-मंथन

रोज शाम को
मैं ही देवताओं
और दानवों का
रूप ग्रहण किये अकेले और निपट अकेले
हो जाता हूँ
आज भी अमृत नहीं निकला
कल भी आधी देह में देव
आधी देह में दानव
सीस मंदराचल
चेतना का वासुकिनाग
अपने में ही समस्त
साधन लिए
दिनभर पुनः चलेगा
समुद्र मंथन
एक एक चीज़ें निकलेंगी नायाब
एक एक देवजन
ले जायेंगे अपनी अपनी पसंद की वस्तुएँ
लक्ष्मी को जैसे ग्रहण कर लिया नारायण ने
विष को फिर मेरे आदिदेव शिव पी लेंगे
अमृत का निकलना तो पुराण की कथा है
एक अनूठा साहित्य
यहां तो कभी नहीं निकलेगा वह
हाँ समुद्र मंथन जरूर चलता रहेगा
मेरे बाद भी।

## लड़की का क्या दोष था ?

लड़की का कोई नहीं था
न उसका धनी बाप
न उसका कमाऊ भाई
न सोने चाँदी से लदी
उसकी भौजाई
न कमर में चाँदी की कुन्जी का झोपा
लटकाये सास
वह अकेली थी
उसे मिर्गी आती थी।
अपने पति से प्यार करती
लड़की
लौटाई जा रही थी
फिर से अपने नैहर
जहाँ से वह पीहर
चुनरी पहनकर आयी थी;
लड़की के दोनों गालों पर
बड़े-बड़े आँसू के गोले
लटक रहे थे,
लड़की का बाप गिड़गिड़ा रहा था
लड़की के सास-ससुर
मुवाबजे की भारी-भरकम राशि
माँग रहे थे,
वह नहीं दे पा रहा था,
अब इस कहानी के पाठक
बतायें की इसमें
लड़की का क्या कसूर था ?

## शहर, दिन-प्रतिदिन

शहरों में आते जा रहे हैं
आस-पास
और दूर-दराज़ के आदमी
गुड़ के ढेले पर
जैसे इक्ठ्ठा होती हैं
चीटियाँ या मक्खियाँ
रोटी रोज़ी और
बनी सवरी बाज़ारू
स्त्रियों के लोभ में
गाँव, नदियों, जंगल
छोड़कर बसे जा रहे हैं आदमी
शहर बनाते
गोल चौराहे
तिराहे
गलियाँ
मोहल्ले
आबाद करते आदमी
स्टेशनों के पास में
कूड़ों के ढेर
रेल लाइनों पर
शौच करते
स्त्री पुरुषों के डरावने
भद्दे पश्चात् देश
जब भी मैंने सुबह-शाम
प्रवेश किया गाड़ी से शहरों में
पाया कि शहर
नालियों, टंकियों
बिजली के खम्भों

तारों/दफ्तरों/दुकानों
और रेलम-पेल औरतों मरदों की
भाग दौड़ का नाम है।
धुआँ, सीटी
लदर-फदर
गला काट स्पर्धा
के शहर में
अक्सर मैंने पाया
कि कुछ पागलों की तादात में
इज़ाफा है
और बचे हुए भी
धीरे-धीरे पागल हो रहे हैं
एक अज्ञात गुफा में
खिचें जाते लोग
अपने दफ्तरों और
सामानों
बीवियों, बच्चों
यार-दोस्तों
और यहाँ तक कि
कुत्तों और
तख्तियों और टटमजारों के साथ
अपने-अपने अजनबी हैं,
शहर
बिजली और रात
पंखा और कूलर
सब कुछ के नाचने का रंग-मंच है।
मैं यदा कदा
शरीक रहता इसमें
ज़्यादातर कुढ़ता रहता हूँ
अपने को खण्ड-खण्ड करता।

# मेरे शहर के लोग

मेरे शहर के लोग
आजकल कुछ और तरह से जीते हैं
और तरह से सुबह शाम करते हैं
कोई महत्त्व नहीं उनके लिए सूर्योदय का
कोई सरोकार नहीं उनसे सूर्यास्त का
वे तब से अपने को दूसरा बनना शुरू कर देते हैं
जब से वे बिस्तरे से जागते हैं
मानी 'शेव' करने की तरह चेहरे को भी 'शेव' कर देते हैं
और एक नया चेहरा कबंध कर जमा लेते हैं
उनकी हरकत बिल्लियों की तरह होती है
फर्क शिकार का होता है
वे मरे हुए, भरसक सिर्फ मरे हुए चूहों का शिकार करते हैं
वे कुत्तों की तरह सूंघते रहते हैं यहाँ-वहाँ
कि कहाँ वे पूँछ हिलायें
फिर कहाँ टाँग उठा कर पेशाब कर दें
उनकी सुरक्षा जब नागरिकता की मुन्तजिर हो जाती है
तो वे पालतू होने की हर कोशिश करते हैं
और कभी-कभी तो जबर्दस्ती किसी
घर की ओर से दूसरे घर पर भोंकते हैं
मेरे शहर के लोग सिर्फ बरसात की प्रतीक्षा में हैं
कि उनके आँगन में बरस जाय
और वे 'कुछ' अपने बर्तनों में जमा कर लें,
मेरे शहर के लोग
जंगल से घृणा करते हैं
व्यंग करते हैं
और वे आम तौर पर पेड़ों को काटने का काम करते हैं
नदियों से डरते हैं
कि कहीं समुद्र में जाने का निमन्त्रण न मिल जाय,

मेरे शहर के लोग
अब सिर्फ युद्ध की प्रतीक्षा में हैं
कि लोग कुछ कटे मरे
और उन्हें राष्ट्रीयता का पाठ पढ़ाने का
एक अच्छा अवसर मिल जाय
यों, मेरा शहर रोशनियों के कारण
बहुत खुश है
और चाहता है कि उसे इसी तरह बने रहने दिया जाय।

# सन्नाटा

इसे तोड़ना होगा
मैंने जोर देकर कहा—
क्योंकि यह शोर से नहीं टूटा रहा
गो, लोग अपनी आवाज को
लाउडस्पीकर से तेज कर रहे हैं
अपनी हरकतों को तेजी से हाँक रहे हैं
अपने भुनगे की तरह की अस्मिता में
शेर की दहाड़ भर रहे हैं
गोया कि अपनी शक्ति से
उसे पछाड़ने में मशगूल हैं
पर ऐसा लगता है
कि भारी पड़ता जा रहा है वह सब पर
वह न टूट रहा
दरक भी नहीं रहा
उसे तोड़ना है
मैंने ऊँची आवाज में कहा
यह एक अहम चुनौती है,
इसे स्वीकार करनी चाहिए
भीड़ फिर और ज्यादा शोर
करने लगी
मैंने सन्नाटे को जंगल, पहाड़ और
नदी की तरफ दौड़ाया,
वह भाग गया था
पर आश्चर्य की बात
पुनः भीड़ की नाक के नीचे
वह लगातार बर्जिश कर रहा था
ज्यादा बलशाली
और ललकारता हुआ।

# वक्त की असलियत

वक्त, धीरे-धीरे अंधेरा होता है
धीरे-धीरे वक्त बीतता है
धीरे-धीरे सूरज उग कर भी
अंधेरे की ओर यात्रा करता है।
हम जिसे कहते हैं सूर्य
वह एक अंधेरे की ही काट में
लगा हुआ सिरफिरा शक्तिमान है।
अरबों वर्षों से सिर्फ लड़ रहा है
सुबह से शाम तक।
उसे छुट्टी नहीं मिल रही है
और अंधेरे की फौज का
बाल-बांका भी नहीं हो रहा है।
इसी अंधेरे को तबाह करने के लिये
हमने जलाये थे प्यार के दीपक।
हम खुदभी जल रहे थे इसी में
ज्योति की शिखा, ज्योति के फूल
और इस दीपावली को
हम जिन्दगी कहते थे
कि वह वक्त की नजर में खत्म हो गयी
वक्त को क्या पता
कि वक्त को जब दुनिया में भी
कोई नहीं जानता था
तब भी वह दिया जला रहा था
हाँ बाती नहीं थी
उसे किसी की स्नेहिल अँगुलियों ने
छुआ नहीं था
पर वह जल रहा था
निरन्तर और निरन्तर।

# संक्रमण-क्रम

एक और दिन बीत जाता है
सब दिनों की तरह
हलचलें शाम को
सामान्य हो जाती हैं
कुछ यादों में बदल जाती हैं
सूर्यास्त अगले दिन पर छोड़ता है
कार्यक्रम
हम सपनों में मन चाहा पायें न पायें
सुबह हमें अलग ही कर देती है
विस्मरण की प्रक्रिया से
याद आती है
जिन्दगी की प्रारम्भिक दिन चर्या
निरंतरता का नाम जीवन है
हम सुबह छोटे मोटे दार्शनिक हो जाते हैं
सड़क शायद इस शताब्दी की
सबसे बड़ी महिमा है
यों अपने देश में जनतंत्र भी है
याद आता है
और हम भाषणों में तब्दील हो जाते हैं
सब कुछ आकस्मिक है
चीजों का दाम बढ़ना
एक अदद परेशानी का बढ़ना
चिड़चिड़ाहट
प्रेमिका की मुस्कराहट की
प्रतीक्षा करना
यों अपना देश
मेरी तरह चुपचाप
सब कुछ सह लेने का
आदी हो गया है।

# अभी बंद है दरवाज़ा

दरवाज़ा वह नहीं खोलेगी
क्योंकि दरवाज़े के उधर
उसके मीठे ईख की
गदराई खेती है
मैं हुड़ार-सा उसमें घुस जाऊँगा।
वह अभी नहीं खोलेगी दरवाज़ा
क्योंकि उसने मीठी रसोई
सीझने के लिए चढ़ा रखी है
चौके में
और मैं जाते ही कहूँगा
मुझे भूख लगी है।
दरवाज़ा वह नहीं खोलेगी
क्योंकि सेब पक रहे हैं
उधर उसके बगीचे में
और वह उन्हें अकेला छोड़कर
नहाने गई है।
दरवाज़े के खुलते ही
जो सम्पदा मुझे
दिख जायेगी
मेरा ईमान डिग सकता है
इसलिए फिलहाल
जब तक मैं अकिंचन हूँ
दरवाज़ा वह नहीं खोलेगी।

# चक्की

चलती है चक्की
गेहूँ मिटता
आँटा बनता
चलती है चक्की
पिसता है कुछ शायद
होती सुबह
दिखते हैं लोग-बाग
पेड़-पल्लव
उड़ते परिन्दे
मिलती हैं आँखें
और पैदा होते जाते असंख्य
जीव-जहान।
चक्की जबतक चल रही है
जीवन का गीत तबतक
गाया जायेगा
बंद नहीं होगी यह चक्की
किसी के लिए
गाने तबतक हैं
जबतक कान हैं
दुनिया यह तबतक
जबतक एक भी जीव है
दोनों ही पाटों में
कोई नहीं खत्म कर सकता
दुनिया को
कोई नहीं रोक सकता चक्की का चलना
कोई भी बम नहीं बना सकता
आततायी युयुत्सु राष्ट्र ऐसा
कि एक अदना चक्की यह

नष्ट हो जाय
क्यों डरते हैं संगीत-प्रेमी
डरना चाहिए डर से
एक यह डर क्योंकि
बन्द कर सकता है चक्की
कर सकता है चक्का जाम।

# घास

उग रही है घास
बढ़ रही है घास
फैल रही है घास
रात में रात हो रही है घास
दिन भर मुस्करा रही है घास
घास पर घास
खुद-ब-खुद टहल रही है घास
घास से घास
खुद को काट रही है घास
घास में हरे-हरे रंग मिला रही है घास
घास में कीट-पतंगों को बिठा रही है घास
घास पर खुद को उगा रही है घास
घास में कब्र खोद रही है घास
कब्र पर घास
उगा रही है घास

# हम घोड़े थे फालतू

घोड़े की तरह
घास के पास
हम हिनहिनाते रहे
हमें हमारा मालिक
यहाँ छोड़ गया
घासें बढ़ती रहीं
हम चरते रहे
बाद में हम वहीं मर गये
हमारा आदमी हमें लेने
कभी नहीं आया
हम उससे बगैर दुबारा मिले
मर गये
हमारा क्या दोष था
हम जो अच्छे न थे।

# ठहरे हुए

तुम बासी कभी न हुए
वही उदास टटकापन
वही भूली-भूली मुस्कान
वही चेहरा
वही देखते हुए भी न देखना
बात करते हुए भी न करना
तब से जमाने बीत गये
पर जब भी तुम से मिलता हूँ
डायरी में लिखी प्रेम कविता की तरह
मैं खुद भी ताजा हो जाता हूँ
पढ़ते हुए।

# आप के लिए कविताएँ

मेरे मन में
आपके लिए हमेशा हैं कविताएँ
आपके पास समय हो
तो आयें उत्सुक
बैठें, हम सुनायें।
जीवन धारा में बहना तो
पत्ता भी जाने है
पर जिनको बनाने आती हैं
अपनी नौकाएँ
वे नहीं बहते अनिर्दिष्ट
जाते हैं अभीष्ट गंतव्य की दिशा में
उनमें से एक मैं हूँ
शख्सियत मंजूर हो तभी
मेरे पास आयें
अन्यथा यथेच्छ जायें
आपके लिए मन में हमेशा हैं कुछ कविताएँ।
बची रहेगी गर दुनिया कुछ भी
बचा रहेगा प्यार कुछ भी
बची रहेगी सुबह की ताजगी
बचे रहेंगे पेड़ों में निश्वास
बची रहेगी कुछ भी चिड़िया में चहचह
बचा रहेगा जीने का विश्वास
तो आना मेरे पास
हम तुम्हें कदाचित् दे देंगे वह संगीत
जिसे सुन देवताओं तक के मन शांत हो जायँ
मेरे पास आपके लिए हमेशा हैं कविताएँ।

## रोशनी

रोशनी उतनी नहीं कि
अंधों को दिखे
अंधेरा उतना नहीं
कि
आँखों को अंधा कर दे।

## प्रणाम

जहाँ तक संभव था किया
अपने लिये जिया,
अब नहीं रहा समय
तो बिना किसी ननु-नच
के मर लिया
होने में मेरे थी होने की नियति
जीने में मेरे थी जीने की नियति
करने में मेरे थी करने की नियति
अब,
मरने में भी मेरे है मरने की नियति
कोई उपाय नहीं,
कोई स्वीकार या
अस्वीकार नहीं
केवल इस नियति-चक्र को
मेरा धन्यवाद
मेरा प्रणाम।

## अपनी मंजिल

कछुए की चाल से
मैं भी चल रहा हूँ
कभी न कभी
मंजिल तक पहुँचूँगा
नहीं भी पहुँचा
तो क्या मुझे हक नहीं
कि जहाँ तक पहुँचूँ
उसे ही मान लूँ मंजिल
अपनी-अपनी मंजिल।

## घृणा

प्यार की दुश्वारी अब बहुत
झेल ली
आओ अब घृणा करें
घृणा करें ऐसे सब लोगों से
जो केवल
अपने को प्यार करें
घृणा एक शाश्वत हथियार है
लड़ने का
घृणा एक ऊँची
मशाल है
राह देखने का।

# ओ मेरी प्रिया

ओ मेरी प्रिया
ताजे फलों सी तूँ
ताजी सब्जियों सी
ताजे भरे-भरे नीम्बू
ताजे सेब
ताजे उन्मीलिन
अनार सी
ललछौही तुम्हारी हंसी
ताजे लगाये पान के जोड़े सी
तुम
जब भी देखता हूँ तुम्हें
ताजा हो जाता
जैसे एक तबलिया
अच्छे तबले का जोड़ा देख ले
एक गिटार वादक
रोम का बना गिटार
हारमोनियम वादक
जर्मन रीड का हारमोनियम।
तेरी पिडंलियों में
बैठी हैं मछलियाँ
तुममें बनाती है
वीणा, मध्यम स्वर
पाँवों में रहता
नारिकेल सा स्पर्श
गदेली में सुपारी की मँहक
पीठ में प्रतीक्षारत
आम्र मंजरियों की मँहक
सँभाले ही रहना

षट ऋतुओं का मधुर भार
झरना जरूर
हर जाड़े में
हर शृंगार के फूलों सा
दुनिया के आँगन में फरना
रंगना जरूर
अपने होने से,
प्यार मुझे करना न करना
होना जरूर
प्यार में
आधी शताब्दी तक

# प्रेमिका ने कहा

प्रेमिका ने कहा
प्रतीक्षा करो
मैं जब नये जन्म लेकर
आऊँगी धरती पर
तुम मेरे लायक दुबारा
बने
तो तुम्हें प्यार करूँगी।
कड़ी शर्तें भी प्रेमी मान लेते हैं
क्योंकि वे बलात्कार कर नहीं सकते।
तब से प्रेमी प्रतीक्षा में है मरने की
और प्रेमिका बिलकुल चिन्ता में
नहीं है मरने या जन्म लेने की,
मेरे पाठक ध्यान दें
प्रेमिका आधुनिक विचारों की है
और प्रेमी का; जैसा सदा से
चलन है
कोई विचार नहीं होता।

# सुरती ठोंको

बैठे-बैठे
मन उचटे तो
सुरती ठोंको
महँगाई बढ़ जाय अगर
तो सुरती ठोंको
दगा दिये जाये
यह दुनिया
सुरती ठोंको।
धरम-करम
सब बेमतलब के ढोंग लगें
तो सुरती ठोंको।
राजा-रानी
काम न आयें
फ़ितरत सब बेकार
चली जाये तो सुरती ठोंको।
अपना-अपना घर देखो जी
दुनिया की सब बातें छोड़ो
सब गरीब मर जाँय
तुम्हें क्या
वे तुमको जब कभी नहीं पतियाँय
तो सुरती ठोंको।

## सम्बन्ध-सूत्र

मेरा क्या है
तेरा-मेरा
या उनका-तेरा
किसी का क्या है
सभी तो काँपते हुए पत्थर हैं
डगमगाकर स्थिर होने वाले
सिर्फ हम महसूस कर सकते हैं
एक दूसरे को
एक दूसरे को चीर कर
एक दूसरे के निकट
या बहुत दूर हो सकते हैं।

## निसर्ग-नियति

हम अपनी मुट्ठियाँ कब तक
बन्द रखेंगे
कसते जाँय तो
नैसर्गिकता रेत सी
रिसेगी
हम सिर्फ मिट सकते हैं
पर किसी को मिटा नहीं सकते
हवा तक को नहीं
हमारे जूतों में रहने वाली
अदना सी हवा तक को नहीं।

# पत्नी—एक

तेरह साल पहले
वह आई थी
डोली में बैठे
मेरे गाँव
डोली से डलवा में
जब पाँव उसके
स्त्रियों ने धराये थे
मूंज के तालाबों में
लाल-लाल कमल खिलआाये थे,
तेरह साल पहले
चौदल साल की पत्नी ने
सीता लक्ष्मी
पार्वती जाने कितने नाम
सासों ननदो भौजईयों से पाये थें,
न उसे राम मिले
नहीं मिले विष्णु
न ही उसे शंकर मिले
मिला एक फटीचर सा टीचर
अब जाने किन हरे दिनों की प्रतीक्षा में
पत्नी है
उसे उलट-उलट कर देखता हूँ
और मौन रह जाता हूँ।

## पत्नी—दो

पहले नहीं लगता था
मेरी पत्नी को
किसी से करूँ बात
किसी भी स्त्री से
मगन रहती थी
मेरे प्यार में
अपनी गृहस्थी के
एक-एक तार जोड़ती
एक घर बनाने का
सपना देखती
बच्चों के व्याह की
बातें सोचती
बच्चियों को विदा करने की
तरकीब में
मन ही मन उदास होती
तरकारी काटती
चावल बुनती
मेरे बुशर्ट साफ करती
मेरी जेब में से
चवन्नी, अठन्नी, रुपया
निकाल, जमा करती
मेरी भोली-भाली पत्नी।
अब वह प्रौढ़ हुई
शहर में रहते
सुनते गुनते
आदमी-औरतों के बारे में
उसे मेरे बारे में शक हो गया
कि मैं भी कहीं

पत्नी के साथ-साथ
किसी और औरत को
उसी अर्थ में
जान सकता हूँ
तब से वह
दु:खी-दु:खी दिखती है
कुछ प्रौढ़ और अनुभवी सी
कुछ अजीब ढंग से
अपने भोलेपन के विरुद्ध
चालाक, चाक चौबन्द।
मैं शहर को गाली कैसे दूँ
इसने ही तो दिया मुझे नौकरी
गरीब लोगों के बीच
एक मोटी तनख्वाह
एक इज्जत
एक घर
एक सुविधा का संसार
पर उसने ही खत्म कर दिया
मेरी पत्नी का भोला-भाला
कच्चे मिट्टी के बर्तन में
ताजे जल सा
रखा प्यार।
अब मैं क्या करूँ
कहाँ से ले आऊँ
पत्नी की गौरैया जैसी
चहक वापस
कैसे विश्वास दिलाऊँ
शहर में
अभी भी बाकी है
बाकी रहना चाहिए
एक गाँव
जो रामचरितमानस के पाठ के बाद

रह जाता है
आदमी की नाभि
उसके ओठ
और उसकी आखों में
ठाकुर जी के प्रसाद के
पवित्र स्वाद की तरह
जिसे कोई भी कवि
शायद ही कह सके
उसी अर्थ में
प्यार।

# स्मृति शेष पिता : दो कविताएँ

एक

पिता का कुछ न जला था
न चोटी
न जनेऊ
न तिलक
न धोती
न प्रार्थना
न पूजा
न संध्या
न गायत्री
न गीता न भागवत
सिर्फ पिता की देह
जल गयी थी
पुत्रों में अधिष्ठित
उनकी आत्मा
कभी नहीं भस्मसात होगी
सिर्फ उनकी
चिढ़
जिद
और 'मुन्ना'
कहकर पुकारती
आवाज
अन्तरिक्ष में
लुप्त हो गयी थी
कभी कभी
कहीं से लौटने वाली
उपस्थिति की हथेलियाँ से

प्रणाम के लिए झुके
शीश का आकाश
विलुप्त हो गया था
मैं हूँ
इसलिए पिता हैं
पर पिता की जगह
एक पुत्र विलीन
हो गया है,
जो और किसी का
न था
सिर्फ उनका था,
हाय, जो चले गये
उन्हीं का
नुकसान किया
दुनिया ने।

दो

गंगा में डाल दी मैंने
पिता की अस्थियाँ
डालने पर
याद आया
वे प्लास्टिक की थैली में
थीं
और यदि वह खुली नहीं
तो क्या होगा
मुक्ति का
पिता की
मुक्ति का
हे गंगा
भगीरथ प्रयत्न करने
मुझे तो
आता नहीं

दो बूँद
आंखो का जल
डाल देता हूँ
तुम्हारी धारा में
यद्यपि सागर तुम्हारे पति हैं
अकिंचन की भेंट
मेरे पिता को मुक्त कर देना।

## मेरे रहते वह नहीं कटेगा

पहले सोचा था
पिछवाड़े के पाँच वर्ष पुराने छोटी बिटिया के लगाये
अमरूद के पेड़ को
कटवा दूँगा,
दागी फल देता है
और बन्दर
शहर में फलदार पेड़ों के अभाव में
यही आते हैं
और फल खाते हैं यहाँ तक तो ठीक
पत्नी को बेहद डरा देते हैं.
पर आज सबेरे
एक तोते को
अमरूद कुतरते देखा
अमरूद के डैनों की ओर
चुप-चुप देखता रहा,
लगा हरे-हरे पात
और हरे-पीले फलों वाले
इस एक मात्र मोहल्ले के
गरीब परवर को काटना ठीक नहीं
गिलहरियों, गरीब घरों के बच्चों
बन्दरों, तोतों और
जाने कितने शहरी
आक्रमण से परेशान
पक्षियों के एक मात्र
माधव-निकुंज को
काटने का पाप
मैं नहीं लूँगा।
मैंने पेड़ से

जब अगली मुलाकात की
पेड़ खुश होकर
मेरे ऊपर पत्तों की छाया कर रहा था
और गिलहरियाँ ऐसे
प्रसन्न थीं
जैसे मुझे डालियों पर भागने की
ट्रेनिंग दे सकती हैं।
मैं खुश हूँ कि पेड़ है
और पेड़ खुश है कि
मेरे रहते वह नहीं कटेगा।

# वे जरूर आयेंगे

वे हमारी हड्डियों का हिसाब
लेने आयेंगे
हमें जंगल से अलग कर
एक पेड़ की तरह
फिर डालियों से अलग कर
एक ठूंठ की तरह
खाल से अलग कर
काठ की तरह
जब किसी मिस्त्री को दिया जायेगा
तो हमारी हड्डियों का हिसाब लेने
सहसा प्रकट होंगे
हमारे उनके बीच में
टांगी वाले
अपनी मजूरी पायेंगे
और हम एक पूरे के पूरे
संभावनाओं के वसन्त से
जुदा कर दिये जाएंगे
हमारी हड्डियाँ
उनके लिए विलास होंगी
वे अपने विलास का
हिसाब किताब जरूर रखेंगे
वे हमारी हड्डियों का हिसाब लेने
जरूर आयेंगे।

## इस साल

इस साल पेड़ पत्ते
हम कुछ न हुए
हम पक्षी भी न हो सके
हममें से कोई दरद की दरक
चीख की तरह नहीं निकली
हम क्या सताये नहीं गये
कि हममें टूटने की शक्ति नहीं थी
दर असल हम इतना मारे गये
कि बेहोश होने की शक्ति नहीं रही
हमारा सवत्सर हमें जिलाता रहा
और हम मार खाने के लिए
लगातार जीते रहे,
जीने-देने की शुक्रिया
जीते रहने की दुआएँ।

# जिसे हम प्यार करते हैं।

इस तरह
जो तोड़ती है
वह नहीं है
हवा
पुरुवा या कि पछुवा
एक नारी है
जिसे हम प्यार करते हैं।
शाम हँसती खिलखिलाकर
हम नहीं हँसते
रात कहती बहुत कुछ
पर हम नहीं सुनते
इस तरह जो छीनती
सुख नींद आठोयाम
एक नारी है
जिसे हम प्यार करते हैं।
एक मीठी याद
आँखों में बसी रहती
एक खिलता फूल
प्राणों में मँहकता है
इस तरह हर सांस
जिसकी याद करती है,
एक नारी है,
जिसे हम प्यार करते हैं।

# शब्द और अर्थ

तुम एक अर्थ भरे सागर हो
शब्दों की सीपियाँ
शब्दों की मोतियाँ
शब्दों के शंख
और शब्दों के रत्न
शब्दों के जाने ही कितने
ये रूप और नाम
किन्तु सागर तो सागर है
उसका वह लहराना
भीतर से बाहर को
बाहर से भीतर को
छूना
आना
जाना
कहो बन्धु, कितने संकेत बना सकते हो।

## सम्प्रेषण

कुछ शब्द बन रहे थे
उस काले पर्दे के पीछे
कुछ हलचलें थीं
अनाम और अविकल
मैं निरुत्तर था
हवा ठीक से चल रही थी
मैं निरुत्तर था
साक्षी थे पेड़-पत्ते
काँपती हुई पत्तियाँ
तमाम कुछ तैर रहा था
एक नदी थी
और उसका एक बहाव
मैं निरुत्तर था
कितना कठिन है
उन शब्दों को दुहराना
जिन्हें मैंने याद किया था।

## रूप सरोवर

काँपता है मन
रूप सरोवर होता है
उतरने से पूर्व सोपानों पर
दृष्टि जाती है
तुम तो कुछ नहीं हो-
'मलयानिल'
यह मैं हूँ
जो तुम्हारे परिमल
को पहचानता हूँ।

# उद्यान की बेंच

किसे समय है
रुके, देखे,
पार्श्व में खड़ा
गुलाबों का मौन
वृन्तों पर मुसकराते
अनबोलते गेंदा के फूल
मैं
यहाँ
कल भी
आया था
उद्यान की बेंच
कुछ कहेगी सहीं
सिर्फ प्रतीक्षा करेगी।

# शहरी रिक्तता का गीत

उत्तरोत्तर हो गये हम रिक्त!
कल कहाँ थे
आज हैं हम वहाँ
रोंगटे सारे खड़े हो गये
देख करके जिन्दगी को जहाँ
हो गये हैं दिन चुभन से सिक्त!
मिली है जो भेंट में माला
वह नहीं है फूल की माला
प्यार के दो शब्द पर
संसार का ताला
क्यों हुआ कैसे हुआ इतना जमाना तिक्त।
शाम होते ही स्वजन की कमी
आँख में भर रही नीली नमी
कहाँ तक ओढ़े बिछायें चुटकुले
दोस्त में है दोस्ती की कमी
शहर के इन रँगे लोगों का
पैंतरा है स्वार्थ से अभिसिक्त!

# यही तो होता रहा है हर बार

मैंने कितने शब्द खरच कर डाले
झोली में पर प्यार के आटे-दाल
नहीं आ पाये,
मैंने फेंके कितने ही मजबूत जाल
पर रूप किसी का
मछली बन कर फंसा न उसमें
मैंने आस लगाई
अब दूसरी पगार की तारीख जैसी
भेंट कभी जब होगी
इच्छित अपने कुछ सामान
खरीद कर रख लूँगा
यादों की अंटी में
तनहाई में
उनका थोड़ा-थोड़ा उपभोग करूँगा
हर पगार की तारीख आने
और उसे भेटों के नोटों में
बदल-बदल कर
देखा मैंने
यह इच्छा भी पूरी नहीं हुई
अब कोई बतलाये मुझको
इच्छा न करना
कैसे संभव हो सकता है।

# इस बार बरसात में

जैसे भी हो
यह समय
यों न जाय
तुम्हारा बादल बरस जाय
न बरसे बादल
तो हियरा में
विद्युत तो कड़क जाय।
न सही आग लगे
नभ में
धरती पर
थोड़ी तो हवा नरम-नरम चले
सांस यह भीग जाय
तुम्हारे केश तुम्हारी ग्रीवा पर
स्कन्धों पर
खुलें और खुलते ही चले जायँ
मेरे अन्दर समा जाय
कुछ न कुछ तुम्हारा
इस बरसात में।

## महाभारत में संजय की स्मृति में

इस समय का क्या-क्या होगा वहाँ
और यहाँ जो हो रहा है
वह तो जानता हूँ
पर वहाँ क्या-क्या होगा
कीड़े और सिवार
नेवले, सर्प और जादूगर
म्रियमाण सभी जन्तु
और हिंसक जानवर
क्या-क्या कर रहे होंगे
वही वही या कुछ और
जो हम नहीं जानते
दिन पहाड़ों पर घिरे होंगे
बादल
कहाँ-किस नदीं के किस घाट पर
मछुआरा
जाल डाले मछलियों को
पकड़ने की जुगत में होगा
और हत्यारा क्या-क्या प्लान बना रहा होगा
कोई कामी
किस तरह किस कामिनी को
फंसा रहा होगा
बड़ा मजा रहेगा
आदमी को
यदि संजय की तरह आंख हो

# इतिहास दौरे पर है

सब कुछ सनसनी खेज हो गया है
सूरज का निकलना
और डूब जाना
भीड़ का उमड़ना
और सुगंधि और पसीने की बदबू में
तहस-नहस होना,
कोई भी आता है
और एक नया शिगूफा छोड़ जाता है
जबतक आप कैफियत में जाँय
नया शिगूफा शुरू हो जाता है,
राह पर चलना
अचानक किस तरह के अफवाह से
गुजरना हो जायेगा,
आप को बिल्कुल पता नहीं चलेगा
आप नागरिक की तरह नहीं जी सकते
इस विचित्र मौसम में
और ज्योंही अपना सदमा
बयान करेंगे
आप कहीं न कहीं से धर लिए जायेंगे
चाहे सुरक्षा के नाम पर
चाहे इलाज के नाम पर।
आप मुश्किल में पड़ सकते हैं कि
सहानुभूति और दण्ड में
आप कौन सा टुकड़ा चुन रहे हैं
आप जो भी चुनें
वह, वह नहीं होगा
जो आप ने चुना था।
प्रेमिका के इत्र की चर्चा करें

और आप को षड्यंत्रकारी कहा जा सकता है,
पत्तियों, चिड़ियों, रंगों, जंगलों की बात करें
और सुनने वाले
जरूर उसमें से अन्यथा सूंघ लेंगे,
और आप पर अक्सर बहस
उसी विषय को लेकर होगी
जिससे आप का कत्तई कोई सरोकार नहीं,
निहायत सनसनीखेज
चकित कर देने वाले
चहबच्चे, रेलमपेल, धींगा मुश्ती
आपाधापी के संसार में
आप जी रहे हैं,
जी हाँ, आप ही जनाब!
अपने पैरों पर गौर कीजिए
वहाँ से जूते जादू की तरह
गायब हो रहे हैं
हाथों पर ध्यान दें
उगुलियाँ लोप हो रही हैं
और अचानक आखें
कहाँ-कहाँ से कहाँ जाकर टंग जाँय
इसका कोई ठिकाना नहीं।
आप या तो पालतू होने के लिए विवश हैं
या खूंखार आदमखोर
बीच में रहना है तो
ताकत सिर्फ पसलियों तक है,
गजब है यह आंधियों से भरी बरसात
पेड़ उल्टे रहने में अपनी खैर समझते हैं,
क्योंकि छिड़काव
ऊपर-ऊपर चल रहा है
और इसकी मुकम्मल व्यवस्था कर दी गयी है कि
जड़ों तक कुछ नहीं पहुँचे,
हवाई-यात्रा के इस युग में

हर चीज विहंगम-दृष्टि की
मुन्तजिर है,
आप देखते हैं तो इसी तरह देखें
और अपने घोंसलों के बारे में
आश्वस्त रहें,
वहाँ बच्चे आप का इंतजार
बिल्कुल नहीं कर रहे हैं।

## स्मृति-व्यथा

एक शब्द उठाता हूँ
फूल
वह
पत्थर हो जाता है,
एक बिन्दु छलकता है
जल
और वह बर्फ बन कर जम जाता है,
बाहर वर्षा हो रही है
और मेरे एकान्त में
नितान्त सूखा पड़ गया है,
मेघों ने इस ओर आना बन्द कर दिया है,
बिजलियाँ अब नहीं चमकतीं
और न ही धीमी या मूसलाधार वर्षा होती है।
एक याद उठाता हूँ
झुकी पलकों से
आँखों से चिड़िया उड़ती है
और नीली कल्पना के जल में
व्यथा की और लहरें उत्पन्न हो जाती हैं।

## वसन्त-आगमन

यह वसंत है
हम शहराती घुग्घू
पेड़ भी नहीं
कि कल्ले फूटें
पर वह तो आया ही होगा
गिरि पर।
जंगल-जंगल
फागुनी पवन
उसे लेकर घूमता होगा।
फूलों ने न सही
तितलियों ने
स्वागत किया होगा।
हम, किन्तु दरबे में बंद
किताबी गीत
गाते हैं।
क्योंकि हम
प्रकृति का दिया नहीं
नौकरी का दिया
खाते हैं।

# आप कुछ नहीं कर सकते

कुछ नहीं कर सकते
हम
सिवाय अपने हिस्से की
रोशनी में
किसी को बिठा लें
या अपने हिस्से की जगह में
थोड़ा हटकर
किसी को जगह दे दें
या, तमाम कूड़ा-करकट से भरे
दिल में
एक छोटी सी जगह
दे दें
कि छिपा सकते हैं किसी का
घिनौना रहस्य
और उसे दे सकते हैं
उत्तम छवि का प्रमाण-पत्र
आप क्या कर सकते हैं
भव-भय, विभव-विहीनता और रुग्णता
रोटी-रोजी की निश्चितता की
अनुपस्थिति-जन्य पीड़ा में
किसी के लिए भी।
आप थोड़ी सिफारिश कर सकते हैं
उधार दे सकते हैं
उठने बैठने से मजबूर
किसी को सहारा दे सकते हैं
और क्या कर सकते हैं
कुछ इससे ज्यादा होते
तो कर देते

इतने बड़े पैमाने पर
दुःखी जनों के लिए कुछ भी
पर आप क्या करेंगे श्रीमान्
एक कवि के रूप में
आप तो वेद भी नहीं रच सकते
इस जमाने में
और रचेंगे
तो कितने लोग पढ़ेंगे
और पढ़कर पायेंगे भी क्या?
कुछ लोगों ने वेद पढ़ा भी
तो पाया भी क्या?
किस्सा कोताह
आप कुछ नहीं कर सकते
अतः अपने लिए
जुटाइए सुविधा
खरीदिए और खाइए,
एक दिन
मर जाइए
चुपचाप।

## शब्द और चुप का रहस्य

थोड़ा सा और दर्द बढ़ेगा
तो कुछ नहीं बचेगा
न शब्द बचेंगे
न बचेगा कौतुक
न कोई नायक बचेगा
न कोई बचेगी नायिका
और जब नहीं कुछ बचेगा
तो कहाँ से बचेंगे
आलोचक
और बचे भी रहे तो
क्या देखेंगे वे
इसलिए कहता हूँ
और ज्यादातर चुप रहता हूँ
कि शायद मेरे ही कहने
या चुप रहने से
दर्द उतना न बढ़े
कि कुछ बचे ही नहीं
मैं कोई सुख-सागर की मिठाई खाने के लिए
रचना-रत नहीं
न काष्ठ मौन होने के लिए
चुप पर देता हूँ बल
कि शायद कुछ लोगों के कारण ही
कुछ इतना न बढ़े दर्द का तापमान
कि कुछ बचे ही नहीं आवर्त्तमान
शब्द और अर्थ की मीमांसा के लिए।

# गांधी के प्रति

जहाँ से यात्रा शुरू होती है
वहीं जाकर समाप्त होती है,
किन्तु कुछ रास्ते ऐसे होते हैं
जिनका कोई जवाब नहीं होता।
ऐसा ही था तुम्हारा रास्ता
तुम्हारे साथ का आदमी
थका नहीं, रुका नहीं,
सिर्फ चलता रहा
चलता रहा
'चरैवेति' 'चरैवेति'।
वाकई झुकना ही पड़ता है
गोकि आदमी झुकना नहीं चाहता है
किसी इंसान के सामने
और यह भी इसलिए
कि इंसान इंसान में फर्क क्या है ?
लेकिन कुछ दृष्टियां होती हैं
जो सीधे उतर जाती हैं
आँख की आन्तरिक सीढ़ी से
बहुत गहरे
हृदय के सरोवर में
जहाँ के अधखिले कमल
और ज्योति पाकर
विकस जाते हैं।
कुछ है ही ऐसा जादू
बाबू तुम्हारी आँख
और उसपर चुपचाप विश्राम लेते हुए ऐनक में
मुझे काफी लगता है
यही एक यंत्र

अंतरिक्ष की गहराइयों का रहस्य
जान लेने के लिए।
गलत है कहना
आदमी चांद पर पहुँच गया।
विराट् पुरुष की दो आंखें
सूर्य और चन्द्रमा
अभी नहीं पहुँचा है इंसान
सत्य और अहिंसा के वे नेत्र
अभी अबूझे हैं।
बाबू, तुम होते तो
कह देते
कि गलत है तुम्हारी यात्रा
दिलों में पहुँचो,
उसकी गहराइयों में उतरो
पुराण-पुरुष की दोनों आंखें वहाँ बसती है।
क्या तुम्हें इतना सामान्य-सा
ज्ञान नहीं
कि जहाँ इंसान होता है
वहीं उसकी आंखें होती हैं?
जाओ, खोज लो जितना चाहो
ढूँढ़ लो अपनी
आकांक्षा
महत्त्वाकांक्षा
लौटकर तो वहीं आओगे न।
आश्वस्त हूँ
तुम वहीं लौटोगे
घुटनों की धोती
और खेती में
क्योंकि अनाज
कलियुग का ही अमृत नहीं
कल-युग का भी अमृत रहेगा।

# भयानक शब्द

एख दिन अचानक लाल हो गयी सारी धरती
दुनिया के पैगम्बरों ने
अपने-अपने आसनों पर बैठे-बैठे
खुदा का नाम लिया।
कितना हास्यास्पद है खुदा
खुदा न सही
उसका नाम
जो ऐसे मौकों पर भी
ओठों पर छा जा जाता है
खैर, संगीनों, सीनों और गोलियों
के बीच महज एक चीख है
और राष्ट्रों राष्ट्रध्यक्षों के पास
एक अच्छी भाषा
चलती हुई जुबान।
कितने भयानक हैं, आदमी के शब्द
जिन्हें वह ऐसे अवसरों पर इस्तेमाल करता है।

## अरण्य रोदन

हर बार कुछ शेष रह जाता है
कदाचित् इसी का नाम है
संसार
जैसे पुष्प चयन करते समय
कुछ कम ही मिल पाते हैं
देवों को समर्पण योग्य
और मन मसोस कर रह जाता है।
जैसे भोजन करते समय
मन में आता ही है कि
पड़ोस में शायद नहीं जल पाया
चूल्हा
अभाव या
किसी न किसी कारण
सड़को पर चलते समय
कुछ लोग निकल ही आते हैं
ऐसे बदतमीज
जो नहीं जानते धीरे-धीरे
चलने वाले बीमार आदमी का दर्द
और गाड़ियाँ उनके बगल से
ऐसे निकालते हैं जैसे
वे जरा सी गुंजाइश छोड़ रहे हों
उस आदमी के जीने की।
प्यार करते समय
प्रेमिका कभी नही उतरती है
प्रेम के प्रतिमानों पर खरी
और यह बात इक तरफा नहीं है।
हर पिता कहाँ दे पाता है
उसी तरह हित-संरक्षण

और बेटा कहाँ कर पाता है
उस तरह की श्रवण-निष्ठ सुश्रुषा
जब उसे बहुधा जरूरत पड़ती है।
गली-गली में गरीबी का कचरा
ढोती स्त्रियाँ को देखकर
सरकार कहाँ उदग्र होती है कुछ करने को
और सामाजिक संस्थाओं के पास
इतनी शक्ति कहाँ है।
हर पतझर के बाद
वसंत सदा एक-सा सब जगह आये
ऐसा ऋतु विज्ञान में संभव है
पर गाँवों, कस्बों और शहरों में
ऐसा हमेशा कभी संभव न हुआ
ईश्वर सर्व समर्थ होगा
भक्तों के लिए
पर
नाम तो सभी लेते हैं
उसका
और ऐसे जीते हैं
मानों वे कीड़े हों।
परमात्मा कीड़ों के स्तर का
समाजवाद हमेशा
मुहैया करता है
और हर-बार समता आने से
रह जाती है।
कवियों और लेखकों
कला-प्रेमी और संगीतज्ञों के वहाँ
कभी-कभी
कुछ घटित होता है ऐसा
कि शांति का दिया जले
पर शांति कितने कानों को
मिल पाती है

और किस सीमा तक।
जन्म और मृत्यु
के बीच शेष जगत्
हमेशा कुछ थोड़ी सी
चीजें यदि चाहता है
तो वह कहाँ मिलती हैं सबको,
महान महत्त्वाकांक्षियों को
छोड़कर।
ज्यादा से ज्यादा लोग
तो बस इतना चाहते हैं कि
अच्छी आयु मिले
सम्मान मिले
भर पेट भोजन मिले
चाहे इसके लिए गला काटने के
अलावा कोई भी काम मिले
पर विश्व के चिन्तक
कभी इतना भी कहाँ दे पाये हैं ?
जानता हूँ कविता नहीं लिखकर
अरण्य रोदन कर रहा हूँ
पर यह क़ार्य भी तो
किसी न किसी कवि को ही
करना है।

# कलिकथा

कलियुग में
लोग प्राय: कहा करेंगे
कि वे प्यार करते हैं,
कलियुग में लोग
स्त्री को अचानक देखकर
खुश हो जायेंगे,
स्त्री यदि सुन्दर होगी,
वे जवान स्त्री को प्यार करेंगे
और वृद्धाओं को देखना नहीं चाहेंगे
चाहे वे उसकी माँ ही क्यों न हो,
कलियुग में
स्पर्श सुख
केवल युवा स्त्री का रहेगा
पुरुषों की हथेलियो में,
कलियुग में
बाल खोलकर चलना
एड़ी रगड़ना
और पिडंलियाँ दिखाना
आम बात होगी,
पुरुष किसी स्त्री के लिए
दूसरी स्त्री का त्याग नहीं करेंगे
और स्त्रियाँ भी
अपने पतियों के लिए
कभी नहीं छोड़ेंगी पर पुरुष
दौड़ते रहेंगे कुत्ते
और जब घर में आयेंगे
तो अचानक करोड़पति कहलायेंगे।
कलियुग एक गन्दा युग है

धर्म का प्रचार होगा
ओर अधर्म चलता रहेगा,
लोकतंत्र के लिए
लोक ही हत्या होगी,
कुछ भी नहीं बिकेगा
बिना किसी
थ्रिल के।
चीजों का मूल्य
वही होगा
जो विज्ञापन
में निहित हो,
छोटे होते जायेंगे
लोग डौल से
और इच्छाएँ
बढ़ती जायेंगी
पर्वतों सी।
इति कलिकथा।

# जीवन

घिरे रहते हैं बाण
जीवन की छाती पर
हिरे रहते हैं बाण।
कुछ बाणों के फलक
शक्ति से फेंके गये
छाती का रक्त-रस
पिये रहते हैं बाण।
बाण तो चल रहे
अगणित शत्रुओं के
सभी वे धनुर्धर हैं
धनुर्विद्या में पारंगत
आप भी तो चलाते ही रहते हैं
बाण।
स्वयं बचना है
औरों को मार कर
यही तो जीवन हैं
सत्वों की श्वास भर।

## बूढ़ी औरत

बूढ़ी औरत
हाथ भर चुरिया पहने
पाँवों में पायल
बिछिया जमाये
बाल रंगे
पतली हो गई चोटी को
पीठ पर टिकाये
किस तरह करवट बदलती है बेचैन
अपने दर्द की शिकायत करती
दवाई के बारे में पूछती
अपने अच्छे दिनों की
प्रतीक्षा में है,
कि अपने उसके नाती-पोते
उसके अनुसार जिएँ
और वह अपनी इच्छा-मौत मरे,
सोचता हूँ
भगवान् का बार-बार
उल्लेख करती वह स्त्री
क्या जिन्दगी की सिफारिश करती है
या अपनी नियति को
टुकड़े-टुकड़े में चमकीला बनाये रखने की
कोशिश में है,
भगवान् उसका सहारा हो न हो
वह भगवान को
सहारा दिये हुए है
उसकी झुर्रियों में
देश अपनी नदियों की

लकीरों के साथ
जिन्दा है
और अज्ञात दूरी पर मौत
उसके घर में
घुसने की
जुगत निकाल रही है।

# बची रहेंगी कविताएँ

साक्षी रहेंगी कविताएँ
हम चाहे रहे न रहें
जीवित बची रह जायेंगी
हमारी. अभीप्साएँ।
किसी का भी जीवन
जब तक रहेगा
किसी का भी स्व रहेगा
तब तक दुहरायेंगी पीढ़ियाँ
ये कविताएँ।
शब्द नये होंगे
राष्ट्र नये होंगे
भाषाएँ अलग-अलग होंगी
पर आत्मा की तरह
अन्दर रहेंगी कविताएँ
नदियों के तट पर
नयी सृष्टि में
नये नगर बसेंगे
जंगलों में खोजे जायेंगे
खाद्य कन्द-मूल
खेले न जायेंगे शिकार न सही
मनाये जायेंगे
कबीलों में भोजनोत्सव
जलाये जायेंगे अलाव
इकट्ठे होंगे लोग
गीतों में हम गाये जायेंगे
निश्चय ही बची रहेंगी
हमारी भावनाएँ।
कोई भी युग हो काल

जब तक जीव-जगत् है
ऊपर नभ है
नीचे धरती
समुद्रों में हाहाकार की भाँति
गूँजती बची रहेंगी कविताएँ।

## अनन्त मिश्र

**जन्म** : 18 अगस्त 1946
ग्राम : बेलवही, पोस्ट : बहदुरी बाजार
(महराजगंज) जनपद

**शिक्षा :**
एम०ए०, पी-एच०डी०।

**पिता :** स्व० पं० हरिहरप्रसाद मिश्र

**माँ :** स्व० तीर्था देवी

**बड़े भाई :**
पं० रमाकान्त मिश्र

**प्रकाशित कृतियाँ :**
स्वातंत्र्योत्तर हिन्दी कविता (आलोचना ग्रन्थ), अनेक कविताएँ, लेख, आलोचनात्मक निबन्ध पत्र-पत्रिकाओं में प्रकाशित, कविता और दर्शन में अभिरुचि।

**सम्प्रति :**
वरिष्ठ उपाचार्य, हिन्दी विभाग
दीनदयाल उपाध्याय गोरखपुर विश्वविद्यालय
गोरखपुर

**सम्पर्क :**
नलिनी निवास
दाउदपुर, गोरखपुर
दूरभाष : (0551) 340419

विश्वविद्यालय प्रकाशन, वाराणसी